ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

एम.बी.ए. पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम कोड : MBA - 001

तृतीय सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : एमएस – 429

पाठ्यचर्या का शीर्षक : वित्तीय संस्थाओं का प्रबंधन

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

तृतीय सेमेस्टर - एमएस 429 वित्तीय संस्थाओं का प्रबंधन

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
समकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

संपादक

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक: एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

संपादक मंडल

डॉ. रवीन्द्र टी. बोरकर
सह प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

डॉ. ए. के. जे. मंसूरी
जी. एस. कॉलेज ऑफ कॉमर्स, वर्धा

डॉ. राम ओ. पंचारिया
बी. डी. कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, सेवाग्राम

मनोज कुमार चौधरी
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

डॉ. विनय चतुर्वेदी
सहायक प्रोफेसर, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

प्रकाशक:

कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट: हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र - 442001

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना एवं संयोजन

मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक: एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

इकाई लेखन

मनोज कुमार चौधरी
सहायक प्रोफेसर,
प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

सुश्री राधा ठाकरे
टंकक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of1997)

विषय कोड: MS 429 **क्रेडिट्स:** 2 क्रेडिट

विषय का नाम: वित्तीय संस्थानों का प्रबंधन (Management of Financial Institutions)

पाठ्यक्रम के उद्देश्य:

- वित्तीय संस्थानों के ज्ञान से विद्यार्थियों को परिचित कराना।
- विभिन्न वित्तीय तथा गैर वित्तीय संस्थानों के बारे में पता लगाना तथा समझना।

मूल्यांकन के मानदंड:

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सत्रीय कार्य : 30 %

पाठ्यक्रम सामग्री:

इकाई – I: वित्तीय प्रणाली का परिचय (Introduction to Financial System)

- वित्तीय प्रणाली: अर्थ, परिभाषा और कार्य (The Financial System: Nature, Evolution and structure)
- वित्तीय प्रणाली के घटक (Structure of Indian Financial System)
- भारतीय मुद्रा बाजार (Indian Money Market)
- विदेशी विनिमय बाजार (Global Money Market)

इकाई – II: बैंकिंग वित्तीय संस्थायें - I(Banking Financial Institutions - I)

- बैंकिंग का परिचय (Introduction of Banking)
- विकास और इतिहास (Evolution and History)
- बैंकों की सेवायें (Services of Banks)
- बैंकिंग में प्रौद्योगिकी (Technology in Banking)

इकाई – III: बैंकिंग वित्तीय संस्थायें - II (Banking Financial Institutions-II)

- बैंकिंग का सिस्टम (Systems of banking)
- केंद्रीय बैंकिंग (आरबीआई) (Central Banking(RBI))
- भारत में वाणिज्यिक बैंकिंग (Commercial banking in India)
- भारत में बैंकिंग कानून (Banking Legislation in India)

इकाई – IV: सहकारिता और अंतरराष्ट्रीय बैंक (Co-operatives and Foreign Banks)

- सहकारी बैंकिंग प्रणाली (Cooperative banking system)
- भारत में सहकारी बैंकिंग का महत्व (Urban Cooperative Banks)
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (State Cooperative Banks)
- अंतरराष्ट्रीय बैंक (Foreign Banking Systems)

इकाई – V: गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें (Non Banking Financial Institutions)

- औद्योगिक वित्त और संस्थायें - आईएफसीआई, आईसीआईसीआई, आईडीबीआई, नाबार्ड, एलआईसी (Industrial Finance and Institutions - IFCI, ICICI, IDBI, NABARD, LIC)
- अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थायें (International Financial Institutions)

सम्बन्धित पुस्तकें:

- Gomez, Clifford (2010), Financial Markets, Institutions and Financial Services, PHI Learning, New Delhi.
- Gordon, Natarajan (2010), Financial Markets and Services, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Kohn Meir (1999), Financial Institutions and Markets, Tata McGraw Hill, New Delhi.

अनुक्रम

क्र. सं.	इकाईयों के नाम	पृष्ठ संख्या
1.	इकाई – I वित्तीय प्रणाली का परिचय	6-30
2.	इकाई – II बैंकिंग वित्तीय संस्थायें - I	31-44
3.	इकाई – III बैंकिंग वित्तीय संस्थायें - II	45-82
4.	इकाई – IV सहकारिता और अंतरराष्ट्रीय बैंक	83-115
5.	इकाई – V गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें	116-132

इकाई - 1 वित्तीय प्रणाली का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 वित्तीय प्रणाली: अर्थ, परिभाषा और कार्य
1.3 वित्तीय प्रणाली के घटक
1.4 भारतीय मुद्रा बाजार
1.5 विदेशी विनिमय बाजार
1.6 सारांश
1.7 बोध प्रश्न
1.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- वित्तीय प्रणाली के मूल अवधारणा को समझ सकेंगे।
- भारतीय मुद्रा बाजार एवं विदेशी विनिमय बाजार को समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

वित्तीय प्रणाली दो शब्दों के मेल से बना है – वित्त तथा प्रणाली। वित्त मौद्रिक संसाधनों को दर्शाता है जिसमें राज्य, कंपनी अथवा किसी व्यक्ति के ऋण तथा समता सम्मिलित है। प्रणाली एक अर्थव्यवस्था में आपस में संबंधित संस्थाओं, बाजारों, प्रक्रियाओं, एजेंटों, लेन-देन, दावों एवं दायित्वों के समूह को दर्शाती है। अतः वित्तीय प्रणाली किसी राज्य, कंपनी, संस्था अथवा व्यक्ति को किए जाने वाले ऋण तथा उधारों को दर्शाती है।

प्रत्येक देश की एक वित्तीय प्रणाली होती है जो उसके सम्पूर्ण विकास की रीढ़ होती है। वित्तीय प्रणाली का अभिप्राय अर्थव्यवस्था में, जटिल एवं घनिष्ठ रूप से संबंधित या अंतः मिश्रित संस्थाओं, अभिकर्ताओं, परिपाटियों, बाजारों, लें-देनों, दावों तथा देयताओं के समूह से है। वित्तीय प्रणाली बचतकर्ता तथा निवेशकर्ता के बीच एक माध्यम की भूमिका निभाती है। यह बचतों को निवेश में परिवर्तित करके पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करती है।

यह इकाई भारतीय वित्तीय प्रणाली के पारस्परिक रूप से सम्बन्धित दो पहलुओं पर केन्द्रित है। प्रथम, इसमें मुद्रा बाजार के संघटकों एवं कार्यों की विवेचना की गयी है। चूँकि मुद्रा बाजार एक केन्द्र बिन्दु है जिसके इर्द-गिर्द देश का केन्द्रीय बैंक (जैसे कि भारतीय रिर्जव बैंक) मौद्रिक नीति को कार्यान्वित करता है, मुद्रा बाजार में इसके हस्तक्षेप की प्रकृति की भी विवेचना की गयी है। मुद्रा बाजार की प्रकृति एवं भूमिका तथा मुद्रा बाजार में भारतीय रिजर्व बैंक के हस्तक्षेप की प्रकृति की विवेचना की दृष्टि से इस इकाई के दूसरे भाग में भारत में मौद्रिक नीति को लागू करने की कार्य-प्रणाली की व्याख्या की गयी है। नब्बे के दशक में लागू किए गए वित्तीय क्षेत्रक सुधारों के बाद से इस पहलू में पर्याप्त परिवर्तन आ गया है। भारतीय रिजर्व बैंक जिस रूप में मौद्रिक नीति को लागू करता है, उसी रूप में मुद्रा बाजार की संरचना तथा कार्य-प्रणाली में परिवर्तन आए हैं। मुद्रा बाजार में आए परिवर्तनों तथा इसी के अनुरूप मौद्रिक नीति को लागू किए जाने में आए परिवर्तनों की भी विवेचना की गयी है। तथापि, इस इकाई का मूलभूत उद्देश्य मूद्रा बाजार तथा मौद्रिक नीति की अद्यतन स्थिति से विद्यार्थियों को अवगत कराना है।

1.2 वित्तीय प्रणाली: अर्थ, परिभाषा और कार्य

वित्तीय प्रणाली में वित्तीय निवेश सम्मिलित है, जैसे धन तथा पूँजी जबकि वास्तविक प्रणाली में वस्तुएं एवं सेवाएँ सम्मिलित हैं । उत्पादन प्रक्रिया के लिए वित्तीय प्रणाली तथा वास्तविक प्रणाली में सामंजस्य होना अनिवार्य है । वित्तीय प्रणाली वित्तीय तथा वास्तविक क्षेत्रों तथा बचतकर्ता एवं निवेशकर्ता के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाती है । यह पूँजी निर्माण तथा आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करती है । मुख्य रूप से सरकार एवं व्यावसायिक क्षेत्र ऋणी होते हैं, जबकि घरेलु एवं विदेशी क्षेत्र बचतकर्ता होते हैं । भारत में स्टॉक तथा पूँजी बाजार संगठित वित्तीय प्रणाली का हिस्सा है । इनका कार्य देश में बचतों को गतिशील करना तथा निवेश को प्रोत्साहित करना है ।

वित्तीय प्रणाली दो शब्दों के मेल से बना है – वित्त तथा प्रणाली । वित्त मौद्रिक साधनों को दर्शाता है जिसमें राज्य, कंपनी अथवा किसी व्यक्ति के ऋण तथा समता सम्मिलित है । प्रणाली एक अर्थव्यवस्था में आपस में संबंधित संस्थाओं, बाजारों, प्रक्रियाओं, एजेंटों, लेन-देन, दावों तथा दायित्वों के समूह को दर्शाता है । अतः वित्तीय प्रणाली किसी राज्य, कंपनी, संस्था अथवा व्यक्ति को दिए जाने वाले ऋण तथा उधारों को दर्शाती है । अतः वित्तीय प्रणाली किसी राज्य, कंपनी, संस्था अथवा व्यक्ति को दिए जाने वाले ऋण तथा उधारों को दर्शाती है ।

जब वित्तीय प्रक्रियाओं में आगम उपलब्ध करने से वित्तीय प्रणाली विकसित होती है तब देश में बचत एवं निवेश में भी वृद्धि होती है । वित्तीय प्रणाली एक ऐसी यंत्रावली प्रदान करती है जिससे कि बचतें निवेशों में परिवर्तित होती है ।

परिभाषाएँ

विभिन्न प्रबंधकीय (वित्तीय) विद्वानों ने वित्तीय प्रणाली की परिभाषाएँ निम्नलिखित प्रकार से दी हैं:

- **H.R. Machiraju** के अनुसार, "वित्तीय प्रणाली को ऐसी संस्थाओं, साधनों तथा बाजारों के समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कि बचतों को विकसित करते है तथा उन्हें अत्यधिक कुशल उपयोग में लगते हैं। इस प्रणाली में एकाकी व्यक्ति (बचतकर्ता), मध्यस्थ, बाजार तथा बचतों के प्रयोगकर्ता सम्मिलित हैं।"
- **L.M. Bhole** के अनुसार, "किसी देश की वित्तीय प्रणाली अथवा वित्तीय क्षेत्र में विशिष्ट तथा गैर-विशिष्ट वित्तीय संस्थाएँ, संगठित तथा असंगठित वित्तीय बाजार, वित्तीय संसाधन तथा सेवाएँ सम्मिलित हैं जो कि कोषों के हस्तांतरण की सुविधा प्रदान करती हैं। बाजार में अपनाई जाने वाली प्रक्रियाएं तथा प्रणालियाँ एवं वित्तीय अंतःसंबंध भी इस प्रणाली का एक हिस्सा है।"
- **P.N. Varshney** तथा **D.K. Mittal** के अनुसार, "वित्तीय प्रणालियाँ दिग्कल तक वित्तीय बाजारों के विकास की सुविधा प्रदान करती हैं तथा सामाजिक रूप से वांछनीय एवं आर्थिक रूप से उत्पादक उद्देश्यों के लिए वित्तीय संसाधनों का कुछ आवंटन करती है।"
- **V.A. Avadhani** के अनुसार, "वित्तीय प्रणाली मौद्रिक रूप में सेवाओं के प्रावधानों की गतिविधियों को बताती है तथा वास्तविक प्रणाली में गतिविधियों को सुविधाजनक बनती है।"

इन परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रणाली, वित्तीय बाजार, संस्थाएं एवं संसाधन प्रदान करती है। यह एक ऐसी यंत्रावली प्रदान करती है जिससे बचत को निवेश में बदला जाता है। अतः वित्तीय प्रणाली देश के पूँजी निर्माण में सहायता करती है। पूँजी निर्माण मुख्य रूप से एक देश की वित्तीय प्रणाली पर निर्भर करता है।

वित्तीय प्रणाली के कार्य

तरलता के प्रावधान तथा तरलता में व्यापार वित्तीय प्रणाली अथवा व्यवस्था के मुख्य कार्य हैं। इसके अतिरिक्त इनमें निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं:

- यह बचतों को निवेश में परिवर्तित करके पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करती है।
- यह बचतकर्ता तथा निवेशकर्ता के बीच एक माध्यम का काम करती है। यह छिटपुट बचतकर्ताओं की बचतों को उत्पादन निवेशों में लगाकर गतिशील बनाती है।
- यह वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय के लिए भुगतान की एक कुशल यंत्रावली प्रदान करती है।
- यह सुनिश्चित करती है कि लेन-देन की क्रियाएं सुरक्षित और तत्काल लगातार होती रहें।

- यह अंशों की तरलता तथा पूर्वाधिकारों के अनुसार जमा के वैकल्पिक प्रारूप प्रदान करती है।
- यह विविधीकरण द्वारा जोखिम को वितरित करती है जिसके परिणामस्वरूप बचतकर्ताओं का जोखिम कम हो जाता है। जैसे कि म्यूच्यूअल कोशों के संबंध में।
- यह लेन-देन की लागतों को कम करने तथा बड़े पैमाने पर ऋण तथा उधारों द्वारा प्राप्त होने वाली आय में वृद्धि करने में सहायक है।
- यह भौगोलिक सीमाओं के बाहर साधन हस्तांतरित करने की यंत्रावली प्रदान करती है।
- यह बाजार के विभिन्न खिलाडियों जैसे एकाकी व्यक्ति, मध्यस्थ व्यापार गृह तथा सरकार आदि के लिए आवश्यक विस्तृत सूचनाएँ उपलब्ध कराती है।
- यह बेहतर सूचनाएँ प्रदान करके एक ऐसा पोर्टफोलियो बनाने में सहायक है जिसका जोखिम कम तथा आय अधिक है।

1.3 वित्तीय प्रणाली के घटक

वित्तीय प्रणाली के चार मुख्य घटक होते हैं, जो निम्नलिखित हैं:

1. वित्तीय संस्थाएँ
2. वित्तीय बाजार
3. वित्तीय प्रपत्र
4. वित्तीय सेवाएँ

1. **वित्तीय संस्थाएँ** – यह वित्तीय प्रणाली का प्रथम घटक है। ये संस्थाएँ उद्योगों को संस्थानीय वित्त प्रदान करती है। ये बचतकर्ता तथा निवेशकर्ता के बीच मध्यस्थ का काम करती है तथा व्यक्तिगत बचतों के संस्थानीकरण में सहयोग देती है। वित्तीय संस्थाओं तथा मध्यस्थों का मुख्य कार्य निगमों द्वारा निर्गमित प्रत्यक्ष संपत्तियों या प्रपत्रों या प्रतिभूतियों को अप्रत्यक्ष प्रतिभूतियों में बदलना है। ये अप्रत्यक्ष प्रतिभूतियां प्रत्यक्ष अथवा प्राथमिक प्रतिभूतियों की अपेक्षा व्यक्तिगत निवेशकर्ताओं को अधिक अच्छे निवेश उपलब्ध कराती है। उदाहरण के लिए, संयुक्त कोषों की इकाइयाँ, UTI तथा बीमा पालिसी तथा बैंक जमा आदि।

   वित्तीय संस्थाएँ वे व्यावसायिक संगठन हैं जो वित्तीय लेन-देन करती हैं। वे निवेशकर्ताओं तथा ऋणियों को मिलने की सुविधाएँ प्रदान करती हैं। वित्तीय संस्थाएँ निवेशकों तथा ऋणियों को विभिन्न सेवाएँ प्रदान करती हैं; जैसे – निवेश अवसर, गृह-वित्त, जोखिम पूँजी, दलाली, पुनर्गठन,

विध्धिकरण आदि। वे वित्तीय प्रपत्रों का क्रय तथा विक्रय करती है। दलाल तथा वित्तीय संस्थाएँ भिन्न हैं। दलाल एक एजेंट है जो प्रतिभूतियों के क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच लेन-देन की सुविधा प्रदान करता है। परन्तु वह स्वयं धन उधार नहीं लेता जबकि वित्तीय संस्थाएँ स्वयं उधार लेती है तथा इसके बाद उच्च ब्याज दरों पर ऋण देती है।

वित्तीय संस्थाओं को विभिन्न रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है जिनमें से दो महत्वपूर्ण वर्गीकरण निम्नलिखित हैं –

i. **बैंकिंग संस्थाएँ और गैर-बैंकिंग संस्थाएँ** – बैंकिंग संस्थाएँ साख का सृजन करती हैं जबकि गैर-बैंकिंग संस्थाएँ साख की प्रबंधक होती हैं। बैंकिंग संस्थाओं का विशिष्ट लक्षण इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि यह अन्य संस्थाओं के विपरीत अर्थव्यवस्था की भुगतान तंत्र प्रक्रिया में भाग लेती हैं यानी की वे लेन-देन की सेवाएँ प्रदान करती हैं तथा उनकी जमा देयताएं राष्ट्रीय मुद्रा आपूर्ति का मुख्य भाग होती है।

ii. **मध्यस्थ और गैर-मध्यस्थ संस्थाएँ** – बचतकर्ताओं और निवेशकों के बीच में मध्यस्थता करने वाली संस्थाएँ मध्यस्थ संस्थाएँ है। वे मुद्रा उधार देती हैं तथा बचतों को गतिशील करती हैं; उनकी देयताएं अंतिम तौर पर बचतकर्ताओं के प्रति होती है, जबकि उनकी परिसम्पत्तियाँ निवेशकों या कर्जदारों से आती हैं। गैर-मध्यस्थ संस्थाएँ ऋण का व्यापार करती हैं, परन्तु उन्हें सीधे बचतकर्ताओं से संसाधन प्राप्त नहीं होते हैं।

सभी बैंकिंग संस्थाएँ मध्यस्थ हैं। बहुत-सी गैर-बैंकिंग संस्थाएँ भी मध्यस्थ के रूप में कार्य करती हैं तथा ऐसा करने पर उन्हें गैर-बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ संस्थाएँ कहा जाता है।

2. **वित्तीय बाजार** – वित्तीय बाजार वित्तीय प्रणाली के संगठन का महत्वपूर्ण घटक है। व्यावसायिक वित्त का संबंध व्यावसायिक इकाइयों में निवेश के लिए कोषों का प्रबंधन करने से है। निवेशकर्ताओं को अवश्य ही कोष उपलब्ध करवाने चाहिए और इसका अर्थ यह है कि निवेशकर्ताओं को उपभोग कम करके बचत को बढ़ाना चाहिए जिससे कोषों में वृद्धि होगी। कोषों के बचतकर्ता तथा उपभोगकर्ता एक बाजार में एकत्रित होते हैं जिसे वित्तीय बाजार कहा जा सकता है। अतः वित्तीय बाजारों की गतिविधियों में मुद्रा और मौद्रिक संपत्तियों में व्यापार कर्ण सम्मिलित है तथा वित्तीय बाजारों की प्रक्रियाओं को वित्तीय प्रणाली कहा जा सकता है। वित्तीय बाजार बचत-निवेश प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वित्तीय बाजार वित्त के स्त्रोत नहीं हैं।

ऐसे संस्थागत प्रबंधों के रूप में वित्तीय बाजारों को निर्दिष्ट किया जा सकता है जहाँ पर वित्तीय संपत्तियों तथा साख प्रपत्रों का लेन-देन किया जाता है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि वित्तीय बाजार ऐसे बाजार हैं जहाँ विभिन्न व्यक्तियों, फर्मों तथा संस्थाओं की साख की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है।

वित्तीय बाजारों को दो प्रमुख बाजारों में वर्गीकृत किया जाता है, जो निम्नलिखित हैं:

i. **प्राथमिक एवं द्वितीयक बाजार** – नए वित्तीय दावों या नई प्रतिभूतियों में लेन-देन का कार्य प्राथमिक बाजार द्वारा किया जाता है और इस कारण, वे 'नव निर्गमन बाजार' कहलाते हैं। द्वितीयक बाजार पहले से ही जारी या मौजूद या बकाया प्रतिभूतियों में लेन-देन करते हैं। प्राथमिक बाजार बचतों को गतिशीलता प्रदान करते हैं तथा व्यापारिक इकाइयों को नई या अतिरिक्त पूँजी की आपूर्ति करते हैं। द्वितीयक बाजार अतिरिक्त पूँजी की आपूर्ति में सीधे योगदान नहीं करते हैं, बल्कि वे अप्रत्यक्ष रूप से प्राथमिक बाजार में जारी की गयी प्रतिभूतियों को तरल बनाकर पूँजी की आपूर्ति करते हैं।

ii. **मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार** – मुद्रा बाजार ऐसा बाजार है जहाँ पर अल्पकालिक मौद्रिक संपत्तियों अथवा मुद्रा के दावों में व्यवहार किया जाता है, जो कि प्रायः एक वर्ष से कम के होते हैं। इसमें अंतःबैंक कॉल पूँजी के व्यवहार शामिल हैं जिसे कॉल पूँजी बाजार कहा जाता है तथा इसमें सरकारी कोषागार बिल तथा निजी क्षेत्र के वाणिज्यिक बिल भी शामिल हैं, जिन्हें बिल बाजार के नाम से जाना जाता है। यह वित्तीय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है जो कि नकद की अस्थायी कमियों को पूरा करने के लिए अल्पकालीन कोष उपलब्ध कराने में सहायक होते हैं। ये आय प्राप्ति के उद्देश्य से अतिरिक्त कोषों के पुनः प्रयोग की सुविधा उपलब्ध कराते हैं। रिज़र्व बैंक तथा वाणिज्यिक बैंक मुद्रा बाजार के मुख्य सहभागी हैं। इसके अलावा LIC, GIC, UTI, IDBI, NABARD, म्यूच्यूअल फंड तथा अन्य वित्तीय संस्थाएँ भी मुद्रा बाजार में कार्य कर रही हैं।

वे संस्थागत प्रबंध जो दीर्घकाल कोषों के उधार एवं ऋण की सुविधा प्रदान करते हैं वे पूँजी बाजार कहलाते हैं। वे सरकारी एवं अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रारंभ किये गए सार्वजानिक ऋणों तथा नए पूँजी निर्गमनों द्वारा निजी बचतों को औद्योगिक तथा वाणिज्यिक निवेशों में परिवर्तित करते हैं।

पूँजी/प्रतिभूति बाजार अब SEBI (Securities Exchange Board of India) द्वारा नियंत्रित किये जाते हैं। संयुक्त कोष (Mutual Fund), LIC, GIC, FII, विकास एवं सार्वजानिक वित्त संस्थाएँ, निगम तथा व्यक्ति विशेष इस बाजार के मुख्य सहभागी हैं।

3. **वित्तीय प्रपत्र** – व्यक्ति या संस्था के विरुद्ध, भावी तिथि हेतु धनराशि के भुगतान और/या ब्याज या लाभांश के रूप में सावधिक भुगतान के लिए वित्तीय प्रपत्र एक दावा या अधिकार है। यहाँ शब्द 'और/या' का तात्पर्य है कि इनमें से कोई एक भुगतान पर्याप्त होगा परन्तु दोनों के लिए वचन दिया जा सकता है।

प्राथमिक प्रतिभूतियाँ एवं द्वितीयक प्रतिभूतियाँ – वित्तीय प्रतिभूतियाँ प्राथमिक या द्वितीयक प्रतिभूतियाँ हो सकती हैं। प्राथमिक प्रतिभूतियों को प्रत्यक्ष प्रतिभूतियाँ भी कहा जाता है क्योंकि वे कोष के अंतिम तौर पर खरीददारों द्वारा मूलभूत उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष रूप से (या सीधे) जारी की जाती है।

वित्तीय संस्था में विपणन, तरलता, प्रतिवत्यर्ता विकल्पों के प्रकार, प्रतिफल, जोखिम और लेन-देन की लागतों के संबंध में अंतर पाया जाता है।

4. **वित्तीय सेवाएँ** – प्रमुख वित्तीय सेवाएँ, जैसे – वाणिज्यिक बैंकिंग पट्टे पर देना या लेना, किराये पर क्रय, साख रेटिंग इत्यादि वित्त मध्यस्थों द्वारा प्रदान की जाती है। वित्तीय मध्यस्थों द्वारा प्रदान की जाने वाली वित्तीय सेवाएँ, निवेशकों के पास उपलब्ध जानकारी के अभाव और वित्तीय प्रपत्रों और बाजारों के ज्यादा से ज्यादा परिष्कृत होने के बीच पाए जाने वाले अन्तराल को पूरा करती है।

1.4 भारतीय मुद्रा बाजार

भारत में मुद्रा बाजार

सैद्धान्तिक समष्टि अर्थशास्त्र में, वित्तीय आस्तियों के बाजार को ही 'मुद्रा बाजार' कहा जाता है। तथापि, वित्तीय बाजारों के संन्दर्भ में, मुद्रा बाजार को अल्प-कालीन निधियों जैसे कि एक वर्ष तक की अवधि वाली निधियों के बाजार के रूप में जाना जाता है। संक्षेप में, मुद्रा बाजार एक ऐसा स्थान है जहाँ एक वर्ष तक की मौलिक परिपक्वाता अवधि वाले उपकरणों के द्वारा निधियां उधार ली जाती हैं तथा उधार दी जाती है।

इस बाजार में ब्याज दरे वित्तीय प्रणाली में अल्पकालीन तरलता की सूचक हैं। मौद्रिक नीति की दृष्टि से, मुद्रा बाजार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि भारतीय रिजर्व बैंक इस बाजार के माध्यम से अल्पकालीन तरलता (नकदी) स्थितियों तथा ब्याज दरों को नियन्त्रित करने के लिए हस्तक्षेप करता है। मुद्रा बाजार, दिनांकित सरकारी प्रतिभूतियों एवं विदेशी विनमय बाजार के बीच बढ़ते अन्तर-सम्पर्को को देखते हुए मुद्रा बाजार की दशाएं अन्य दो बाजारों, बाजार अल्पकालीन निधियों की माँग एवं पूर्ति के बीच साम्य बनाए रखने की एक यान्त्रिकी उपलब्ध कराता है। यह बाजार अर्ह सहभागियों को अपनी अतिरेक अल्पकालीन निधियाँ निवेश करने एवं अपनी आवश्यकतानुसार कमी को पूरा करने हेतु अल्पकालीन निधियाँ उधार लेने के लिए अवसर उपलब्ध कराता है।

माँग/नोटिस/सावधि मुद्रा बाजार सम्मिलित रूप से मुद्रा बाजार के अंग हैं और कोषागार हुण्डियाँ, पुनर्खरीद विकल्प तथा प्रति पुनर्खरीद विकल्प (रेपो एवं रिवर्स रेपो), वाणिज्यिक प्रपत्र, निक्षेप प्रमाण पत्र तथा बिलों की पुनर्कटौती मुद्रा बाजार में क्रय-विक्रय किए जाने वाले उपकरण हैं।

माँग/नोटिस /सावधि मुद्रा बाजार

माँग मुद्रा बाजार मुख्य रूप से वाणिज्यिक बैंकों द्वारा अल्प–कालीन अविध (प्राय: 14 दिन तक, लेकिन इससे अधिक भी) के लिए निधियों को उधार लेने तथा उधार देने का बाजार हैं। ये सौदे टेलीफोन पर किए जाते हैं तथा इसकी सूचना भारतीय रिजर्व बैंक को दे दी जाती हैं। वाणिज्यिक बैंक प्राय: अस्थायी तौर पर निधियों की कमी का सामना करते हैं (उदाहरणार्थ, नकदी प्रारक्षित अनुपात तथा सांविधिक तरलता अनुपात वचनवद्धताहों को पूरा करने के लिए तथा निधियों के अचानक बहिर्गमन से) या कभी-कभी निधियों का अतिरिक भी होता है। निधियों की कमी हो जाने पर कोई वाणिज्यिक बैंक अतिरेक निधियों वाले वाणिज्यिक बैंक से उधार लेता हैं। इस बाजार में सारे सौदे टेलीफोन पर होते हैं।

यदि उधारी एक दिर (रात भर) के लिए होती है तो इसे 'माँग मुद्रा' कहा जाता है। इस प्रखण्ड को पूरी रात के लिए बाजार कहा जाता है। यदि उधारी की अवधि एक दिन से अधिक किन्तु 14 दिन तक होती है तो इसे 'नोटिस मुद्रा' कहा जाता है। 14 दिन से अधिक की अवधि के लिए गए सौदे 'सावधि मुद्रा' के रूप में जाने जाते हैं। भारतीय मुद्रा बाजार में अधिकांश लेन-देन माँग मुद्रा एवं नोटिस मुद्रा हैं।

इस बाजार में, वाणिज्यक बैंक और प्राथमिक डीलर दोनों ही उधार ले और दे सकते हैं, लेकिन वित्तीय संस्थान (भारतीय जीवन बीमा निगम, यू.टी.आई., जी.आई.सी, आई.डी.बी. आई., नाबार्ड, आई.सी.आई.सी.आई.) तथा म्यूचुअल फण्ड केवल उधार दे सकते हैं। एक विनियामक के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक नैत्यिक रूप से मुद्रा बाजार में निधियों की पूर्ति (उधार देकर) करता रहता है तथा उधार लेकर अतिरेक निधियों को समेटता रहता है। वित्तीय क्षेत्रक सुधारों के एक अंग के रूप में, भारतीय रिजर्व बैंक धीरे-धीरे इस बाजार को विशुद्ध रूप से एक अन्तर-बैंक बाजार (प्राथमिक डीलरों सहित) बनाने की और अग्रसर है तथा गैर-बैंक प्रतिभागियों को इस बाजार से बाहर रखने की बात की जा रहा है।

पुनर्खरीद विकल्प/प्रति-पुनर्खरीद विकल्प (रेपो/रिवर्स रेपो)

पुनर्खरीद विकल्पों-रेपों (जिन्हें तात्कालिक अग्रिम संविदाएं भी कहा जाता है) लेन-देन में कोई एक पक्ष निधियों को एक निश्चित अवधि के लिए (जिसे रेपो अवधि कहा जाता है) किसी संपार्श्विक विशिष्ट प्रतिभूति के विरूद्ध पूर्व-निर्धारित दर (रेपो दर) पर उधार लेता है। यद्यपि इसका प्राथमिक उद्देश्य निधियों को उधार लेना होता है तथापि प्रतिभूतियों का विधिक स्वामित्व भी बदल जाता है। इसका सीधा सा अर्थ यह हुआ कि प्रथम पक्ष प्रतिभूतियाँ दूसरे पक्ष को बेच देता है, साथ ही इन्हीं प्रतिभूतियों को किसी अग्रिम तिथि को पूर्व निर्धारित दर पर फिर से खरीद लेने के लिए भी स्वीकृति दे देता है। इसको परिणामस्वरूप प्रतिभूतियाँ बेचने वाले पहले पक्षकार को प्रभूतियाँ बेचने तथा इनकी पुनर्खरीद की तिथि तक की अवधि के लिए निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

इसी प्रकार, कोई पक्ष जो अस्थाई रूप से अतिरेक नकदी को निवेश करना चाहता हैं, या प्रतिभूतियों की मात्रा को बढ़ाना चाहता है (संविधिक तरलता अनुपात की वचनबद्धता पूरी करने के लिए वाणिज्य बैंक), उपर्युक्त के ठीक विपरीत प्रकार का लेन-देन दूसरे पक्षकार के साथ करता है जिसके तहत वह दूसरे पक्ष से प्रतिभूतियों का क्रय करता है तथा उन्हें पूर्व निर्धारित दर पर पहले से रिवर्स रेपों कहा जाता है। दूसरे शब्दों में प्रतिभूतियाँ बेचने वाले की दृष्टि से ऐसे सौदे रेपो सौदे हैं, जबकि प्रतिभूतियाँ खरीदने वाले की दृष्टि से ये रविर्स रेपो सौदे हैं। कोई लेन-देन रेपो या रिवर्स रेपों में से किस प्रकार का है यह बात पर निर्भर करता है कि इसकी शुरूआत किसने की है। सुनिश्चित तौर पर वर्ततमान में बेची गयी तथा आगे की तिथि को खरीदी जा सकने वाली प्रतिभूतियों की संपार्श्विक जमानत पर उधार लेने की एक विधि रेपो है जबकि रिवर्स रेपो वर्तमान में खरीदी जाने वाली तथा आगे की तिथि को बेची जाने वाली प्रतिभूतियों की विधि प्रति-रेपो उधार देने की एक विधि है।

भारत में, रिर्जव बैंके के अलावा, केवल अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को छोड़कर) एवं प्राथमिक डीलर ही रेपो/प्रति-रेपो कारोबार में भाग ले सकते हैं। गैर-बैंकिंग प्रतिभागी (जैसे कि वित्ती संस्थान) केवल अर्ह प्रतिभागियों को प्रति-रेपो के माध्यम से निधियाँ उधार दे सकते हैं। रेपों बाजार को बड़े आधार वाला बनाने के लिए भारतीय स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीबद्ध कम्पनियों को अप्रैल 2005 से अपनी अतिरेक नकदी रेपो बाजार में उधार देने की अनुमति प्रदान कर दी गयी है। रेपो लेन-देन की अधिकृत प्रतभूतियों में केन्द्र एवं राज्य सरकारों की प्रतिभूतियाँ तथा कोषागार हुण्डियाँ हैं।

अल्पकालीन तरलता (नकदी) को अवशोषित करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक एक निश्चित दर पर रात भर (एक दिन) के लिए रेपो नीलामी करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीय रिजर्व बैंक उतनी प्रतिभूतयाँ बेचने को तैयार हैं, जितनी की माँग एक निश्चित दर प्रतिभागियों द्वारा की जाती हैं। सुनिश्चित रेपो दर इस दृष्टि से निश्चित मानी जाती है कि अल्प-कालीन तरलता की माँग पूर्ति दशाओं के अनुसार इसमें नैत्यिक आधार पर परिवर्तन नहीं होता , जैसा कि परिवर्तनशील दर रेपो नीलामी में होता है। सुनिश्चित रेपो पद में जो भी परिवर्तन होता है वह वार्षिक मौद्रिक एवं साख नीति अथवा मौद्रिक एवं साख नीति के अर्द्धवार्षिक पुनरीक्षण में ही होता है। सरकारी प्रतिभूतियों के रेपो नीलामी (बहु कीमत नीलामी या परिवर्तनशील दर रेपो) दिसम्बर 1992 में प्रारम्भ की गयी थी। प्रारम्भ में रेपो लेन-देन एक या दो दिन की अवधि के लिए किए जाते थे। बाद में ये 14 दिन की अवधि के लिए भी होने लगे। कठोर तरलता दशाओं के चलते बाजार में माँग में कमी हो जाने पर इन्हें सन् 1995 के प्रारम्भ में रोक दिया गया। रेपो लेन-देन सन् 1997 के प्रारम्भ में फिर से प्रारम्भ किए गए लेकिन अब इनका अवधि चक्र 3 से 4 दिन तक का था। 3 से 4 दिन की अवधि वाली स्थिर दर रेपो (सार्वभौमिक कीमत नीलामी) नवम्बर 1997 में प्रारभ की गयी। भारतीय रिजर्व बैंक स्थिर दर रेपो की नीलामी 7 से 14 दिन तक की अवधि के लिए करता है। साथ रात पर के लिए परिवर्तनीय दर नीलामी भी इसी के द्वारा की जाती है। 1 नवम्बर 2004 से 7 से 14 दिन की अवधि वाली स्थिर दर रेपो नीलामी तथा रात

भर की परिवर्तनीय दर नीलामी बन्द कर दी गयी है, तथापि इसे फिर से प्रारम्भ करने का अधिकार भारतीय रिजर्व बैंक के पास सुरक्षित है। यदि परिस्थितियों के अनुसार ऐसा करना आवश्यक हो जाए तो। वर्तमान में, स्थिर दर रेपो तथा प्रति-रेपो नीलामी भारतीय रिजर्व बैंक द्वार दैनिक आधार पर (शनिवार, रविवार एवं अन्य सार्वजनिक अवकाशो को छोड़कर) एक दिन की अवधि के लिए की जाती है।

मौद्रिक प्रणाली में तरलता बढ़ाने के लिए, भारतीय रिजर्व बैंक प्रति-रेपो की नीलामी रेपो दर से ऊँची स्थिर दर पर करता है। प्रति रेपो दर इस दृष्टि से रेपो दर से सम्बद्ध होती है कि इसकी दर रेपो दर से एक निश्चित प्रतिशतांक ही अधिक होती है। स्थिर रेपो दर अक्टूबर 27, 2004 से 4.50 प्रतशत से बढ़ाकर 4.75 प्रतिशत कर दी गयी तथा रेपो दर एवं प्रति रेपो दर के बीच का अनतराल 150 आधार बिन्दु (100 आधार बिन्दु 1 प्रतिशत) से घटाकर 125 आधार बिन्दु कर दिया गया। बढ़ती हुई मुद्रा स्फीति अनुशंसाओं को देखते हुए स्थिर रेपो दर 29 अप्रैल, 2005 से बढ़कर 5 प्रतिशत कर दी गयी तथा प्रति रेपो दर 6 प्रतिशत के स्तर पर ही बनी रही। इस प्रकार इन दोनों के बीच अन्तर 100 आधार बन्दु का बना रहा। चालू वर्ष 2006-07 की पहली त्रैमासिक समीक्षा में रेपो दर 7.0 प्रतिशत तथा प्रति रेपो दर 6.0 प्रतिशत कर दी गयी। 31 अक्टूबर 2006 से प्रभावी रेपो दर 7.25 प्रतिशत है जबकि प्रति रेपो दर 6.0 प्रतिशत के स्तर पर ही स्थिर बनी हुई है। रेपो/रिवर्स रेपो लेन-देन भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा मौद्रिक नीति को लागू करने के लिए किए जाते हैं। अर्ह प्रतिभागी भी बाजार निर्धारित दरों पर आपस में रेपो लेन-देन करने लिए स्वतंत्र हैं। तथापि, वर्तमान में भारतीय रिजर्व बैंक द्वार निर्धारित स्थिर रेपो दर की मौजूदगी में,बाजारी रेपो दर स्थिर रेपोदर से बहुत अधिक आगे-पीछे नहीं रहती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिस रूप में रेपो एवं रिवर्स रेपो को ऊपर परिभाषित किया गया है वह अन्तरराष्ट्रीय प्रवृत्ति का ठीक उल्टा है। भारतीय सन्दर्भ में जिसे रेपो कहा जाता है, अन्तरराष्ट्रीय लेन-दने उसे रिवर्स रेपो माना जाता है और भारत में जिसे रिवर्स रेपो माना जाता है उसे अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर रेपो कहा जाता है। तेजी से बढ़ते वैश्वीकरण के दौरे में इससे भ्रम उत्पन्न हो सकता है। इसी को ध्यान में रखते हुए 27 अक्टूबर 2004 से भारतीय रिजर्व बैंक ने रेपो एवं रिवर्स रेपो की परिभाषाओं को बदल कर उन्हें अन्तरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप कर लिया है। लेकिन इस इकाई में पूरा विवरण पुरानी भारतीय परिभाषा के अनुसार ही है।

कोषागार हुण्डियाँ

कोषागार बिल या हुण्डियाँ भारत सरकार द्वारा निर्गत (364 दिन तक) अल्प–कालीन प्रतिभूतियाँ है जो तीन परिपक्वता अवधियों – 91 दिवसीय, 182 दिवसीय तथा 364 दिवसी के लिए जारी की जाती हैं। चूँकि ये चूक (डिफाल्ट) जोखिम से मुक्त होती है इसलिए कोषागार हुण्डियों पर प्रतिफल अन्य अल्प–कालीन दरों के लिए ऊपरी सीमा (बेंचमार्क) की तरह होता है। कोषागार हुण्डी बाजार ऐसा बाजार है जहाँ अधिकांश देशों में केन्द्रीय बैंक अल्पकालीन व्याज दरों तथा तरलता को प्रभावित करने के लिए नियमित

रूप से हस्तक्षेप करता है। खुले बाजार की क्रियाओं के परिचालन हेतु इस बाजार का विकास अति महत्त्वपूर्ण है।

कोषागार हुण्डियाँ अंकित मूल्य (फेस वैल्यू) की कटौती दर पर जारी की जाती है। 98.53 की कीमत पर जारी की जाती हैं तो इसका अर्थ यह है कि निवेशक उसे वर्तमान में रू.98.53 में खरीदकर 91 दिनों के वाद रू. 100 प्राप्त करेगा। इस उदाहरण में प्रतिफल की दर 5.0677 प्रतिशत होगी [={(100-98.53)/98.53} x (364/91)'। इसमें वर्ष को 364 दिन माना जाता है। 27 अक्टूबर 2004 से भारतीय रिजर्व बैंक के प्रतिफल की गणना हेतु वर्ष को 365 दिन का मानना प्रारम्भ कर दिया है।

91 दिवसीय कोषागार हुण्डियों की नीलामी प्रणाली तथा इनका एक कम्पायमान (वाइब्रेन्ट) बाजार साठ के दशक से पूर्व चलन में था। दो घटनाओं ने इस बाजार को नष्ट कर दिया प्रथम, साठ के दशक के मध्य में नीलामी द्वारा 91 दिवसीय कोषागार हुण्डियों की बिक्री बन्द करके इसके स्थानपर ऑन-टैप 91-दिवसी कोषागर हुण्डियाँ प्रारम्भ कर दी गयी। नई प्रणाली के अन्तर्गत स्थिर ब्याज दर पर 91- दिवसीय कोषागार बिक्री की जाने लगी कि साप्ताहिक आधार पर नीलामी के द्वारा। ऑन-टैप हुण्डी ब्याज दर सन् 1974 तक बैंक दर के अनुरूप परिवर्तनीय रही और उसके बाद से कई वर्षों तक 4.6 प्रतिशत के स्तरपर स्थिर रखी गयी। ऑन-टेप हुण्डियाँभारतीय रिजर्व बैंक तथा अन्य प्रतिभागियों को बेची जाती थी। द्वितीय,पचास के दशक के मध्य में तदर्थ कोषागार हुण्डियों की प्रणाली प्रारम्भ की यगी थी। जैसेही भारतीय रिजर्व बैंक के पास केन्द्र सरकार का नकदी अधिशेष एक निश्चित स्तर से कम हो जाता था, वैसे ही तदर्थ हुण्डियाँ स्वत: भारतीय रिजर्व बैंक को जारी कर दी जाती थी। यह प्रणाली केन्द्र सरकार के घाटे के असीमित मौद्रीकरण का दौर वाली थी। नवम्बर 1986 में 182 दिवसीय कोषागार हुण्डियों को प्रारम्भ किए जाने तथा कोषागार हुण्डियों एवं अन्य अनेक मुद्रा बाजार उपकरणों को द्वितीयक बाजार उपलब्ध कराने के लिए सन् 1988 में भारतीय बट्टा एवं वित्त गृह (डिस्कउन्ट एण्ड फायनेन्स हाउ आफ इण्डिया), की स्थापना के साथ कोषागार हुण्डियों में बाजार की रूचि फिर से दिखाई देने लगी।

अप्रैल 1992 से पन्द्रह दिवसीय नीलामी आधार पर 364-दिवसीय कोषागार हुण्डियों को जारी किए जाने के साथ ही कोषागार हुण्डी बाजार में सुधारों का दौर प्रारम्भ हुआ। जनवरी 1993 में 91-दिवसी कोषागार हुण्डियों की नीलामी प्रणाली प्रारम्भ की गयी। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन तो उस समय आया जब केन्द्र सरकार एवं भारतीय रिजर्व बैंक ने एक समझौता करके1 अप्रैल,1997 से तदर्थ कोषागार हुण्डियों की बिक्री प्रणाली को बन्द कर दिया। इस प्रकार वर्ष 1997-98 से राजकोषीय घाटेका स्वत: मौद्रीकरण होना बन्द हो गया तथापित केन्द्र सरकार को राजकोषीय घाटे के वित्तीयन हेतु बाजारी उधारों पर निर्भरता बढ़ गयी। मौद्रिक नीति के लिए कुछ स्वतंत्रता सृजित हो जाने के साथ-साथ इस निर्णय से भारत में ऋण बाजार के विकास में तेजी आयी।

14- दिवसीय कोषागार हुण्डियों की नीलामी 6 जून, 1997 को प्रारम्भ की गयी तथा 14 मई, 2001 से बन्द कर दी गयी। 182- दिवसीय कोषागार हुण्डियों की नीलामी नहीं की गयी और अन्तत: इन्हें 14 मई 2001 को बन्द कर दियागया। अप्रैल 2005के पहले सप्ताह में 182 दिवसीय कोषागार हुण्डियों की बिक्री फिर से प्रारम्भ कर दी गयी।

वाणिज्यिक बैंक, प्राथमिक डीलर, वित्तीय संस्थान, भविष्य निधियाँ, बीमा कम्पनियाँ, गैर-बैंकिंग बीमा कम्पनियाँ, विदेशी संस्थागत निवेशक तथा राज्य सरकारें कोषागार हुण्डियों में निवेश करने वाले प्रमुख निवेशक है।

वाणिज्यक प्रपत्र

वाणिज्यिक प्रपत्र बड़े, प्रतिष्ठित एवं वित्तीयदृष्टि से मजबूत तथा उच्च साख निर्धारण रेटिंग वाले निगमों द्वारा जारी अल्पकालीन (एक वर्ष तक की अवधि) प्रतिभूति रहित (नदेम, बनतमक) उधारीवित्तीय उपकरण है। गैर-वित्तीय निगम (और प्राथमिक डीलर तथा अखिल भारतीय संस्थान) जिनकी नेटवर्क एक निश्चित स्तर तक है (वर्तमान में 4 करोड़ रूपए या इससे अधिक) 7 दिन से लकर एक वर्ष तक की अवधि के लिए (हाल ही में 26 अक्टूबर 2004 से 15 दिन से घटाकर) वाणिज्यिक प्रपत्र जारी कर सकते हैं। वाणिज्यिक प्रपत्र पाँच लाख रूपए एवं इसके बाद एक लाख रूपए के गुणकों में जारी किए जा सकते हैं। वाणिज्यिक बैंक, वित्तीय संस्थान, म्यूचुअल फण्ड तथा उच्च नेटवर्क वाले व्यक्ति वाणिज्यिक प्रपत्रों के निवेशक हैं।

निक्षेप प्रमाण पत्र

निक्षेप प्रमाण पत्र वाणिज्यिक बैंकों द्वारा लिए जाने वाले अल्प–कालीन उधारों के उपकरण हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को छोड़कर सभी वाणिज्यि बैंक15 दिन की न्यूनतम अवधि से लेकर एक वर्ष तक की अवधि के लिए पाँच लाख रूपए एवं इसके बाद एक लाख रूपए के गुणक के मूल्य वाले निक्षेप प्रमाण पत्र जारी करते हैं। अखिल भारतीय वित्तीय संस्थान भी निक्षेप प्रमाण पत्र जारी कर सकते हैं, लेकिन उनकी अवधि एक वर्ष से लेकर 3वर्ष तक की होती हैं इसलिए उन्हें मुद्रा बाजार का उपकरण नहीं माना जाता। निक्षेप प्रमाण पत्र एक प्रकार से बैंकों की सावधि जमाएं है अन्तर केवल इतना है कि एक पृष्ठांकन मात्र से निक्षेप प्रमाण पत्र इक्विटी शेयरों एवं बाण्डों की तरह से हस्तान्तरणीय हैं जबकि बैंकों की सावधि जमाएं हस्तान्तरणीय नहीं होती। कोषागार हुण्डियों की तरह निक्षेप प्रमाण पत्र अंकित मूल्य की कटौती पर जारी किए जाते हैं। इन पर कटौती की दर प्रतिफल की दर पर जारी करने वाले तथा निवेशक के बीच मुक्त भाव से मोलभाव हो सकता है, ये निक्षेप प्रमाण पत्र व्यक्तियों, निगमों,न्यासों, संस्थागत निवेशकों आदि को जारी किए जा सकते हैं।

जारी करने वाले वाणिज्यि बैंक के लिए निक्षेप प्रमाण पत्र ऊँची लागत वाली निधियों के स्रोत है।

बिलों की पुनर्कटौती

वस्तुओं की बिक्री के सन्दर्भ में कोई विनिमय बिल उस समय उत्पन्न होता है जब कोई क्रेता इसका भुगतान कुछ समय बाद (जैसे कि इन वस्तुओं की पुनर्बिक्री के बाद) करना चाहता हैं और उसका बिक्रेता इसका भुगतान पहले प्राप्त करना चाहता है। ऐसी स्थिति में क्रेता (या आदेशक) एक निश्चित परिपक्वता अवधि का बिल बिक्रेता (यचा आदेशिती) पर जारी कर देता है और इसे बिक्रेता को भेज देता है। क्रेता उस बिल को या तो पृष्ठांकित कर देता है या स्वीकार कर लेता हैं। इसका अर्थ है कि क्रेता उस बिल का भुगतान करने को तैयार है, या बिल में अंकित भावी तिथि को इसका भुगतान कर देगा। यह बिल पृष्ठांकनोपरान्त बिक्रेता को वापस भेज दिया जाता है। बिक्रेता इस बिल का भुगतान जल्दी से जल्दी प्राप्त करना चाहता है, इसलिए वह इस स्वीकृत बिल को अपने बैंकों को प्रस्तुतकर वहाँ से इसका भुगतान प्राप्त कर लेताहै। वास्तविक तौर पर बैंक बिक्रेता से इस प्रकार के बिल में दर्शायी गयी कीमत से कुछ कम कीमत पर क्रय कर लेता है (वह कीमत जिसे क्रेता भावी तिथि को भुगतान करने के लिए सहमत हो गया है)। यह प्रक्रिया बैंक द्वारा बिलों की कटौती कहलातीहै। बैंक को इस प्रकार के बिलों का भुगतान वास्तविक क्रेता द्वार सहमत हुई भावी तिथि को प्राप्त हो जाता है। बैंक को बिल की धनराशि तथा क्रेता को भुगतान की गयी धनराशि का अन्तर प्राप्त हो जाता है जो बैंक की आय है जबकि बिक्रेता के लिए यह अन्तर उसकी लागत है। इस मामले में कटौतीकरने वाला यह सुनिश्चित कर लेता है कि उसे इस बिल का भुगतान निर्धारित तिथि को अवश्य प्राप्त हो जाय(इसके लिए बैंक क्रेता के बैंक के साथ मिलकर बिक्रेता से संपार्श्विक जमानत प्राप्त करके रखता है) । चूँकि विनिमय बिल हस्तान्तरणीय उपकरण है इसलिए बैंक इन्हें किसी तीसरे पक्ष को बेच सकता है। (अन्य बैंक) कोई बैंक इस प्रकार के बिलों को केन्द्रीय बैंक से पुनर्कटौती करा कर उधार देने के लिए निधियाँ प्राप्त कर सकता है। सामान्य तौर पर यह पुनर्कटौती बैंक दर पर की जाती है। ये बिल अन्तर्देशीय (भारत में आहरित किए जाने वाले एवं भुगतान योग्य) हो सकते हैं या विदेशी (भारत से बाहरित किए जाने वाले तथा भारत में या भारत के बाहर भुगतान योग्य) बिलों को माँग बिल (जबकि बिलों का भुगतान क्रेताओं द्वारा उन्हें प्राप्त होते ही किया जाता है) या सावधि बिल (जब बिलों का भुगतान किसी आगे की तिथि को किया जाना संभव हो) प्रकार के हो सकते है।

भारत में, यद्यपि बैंक बड़ी मात्रा में नियमित रूप से बिलों की कटौती करते हैं,तथापि इन बिलों की पुनर्कटौती के द्वितीय बाजार की कमी है। पहले भारतीय रिजर्व बैंक इन बिलों की पुनर्कटौती करके वाणिज्यिक बैंकोंको, उनकी माँग के अनुरूप, निधियाँ उपलब्ध कराता था लेकिन अस्सी के दशक के बाद से यह व्यवस्था बन्द सी कर दी गयी है।

मुद्रा बाजार में भारतीय रिजर्व बैंक का हस्तक्षेप

वित्तीय प्रणाली में तरलता की स्थिति को नियन्त्रिक करने के लिए, भारतीय रिजर्व बैंक नियमित रूप से तरलता अतिरेक को अवशोषित करने के लिए या तरलता की कमी को दूर करने के लिए नियमित रूप से मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप करता है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप किए जाने के दो महत्त्वपूर्ण तरीके हैं (i) स्थायी सुविध या पुनर्वित्तीय, (ii) तरलता समायोजन सुविध। भारत में मुद्रा नीति किस प्रकार से कार्यान्वित होती है, यह जानने के लिए इन दोनों पहलुओं को समझना नितान्त आवश्यक है।

वाणिज्यिक बैंकों को रिजर्व बैंक की स्थायी सुविधा (पुनर्वित्तीयन)

एक अन्तिम-ऋणदाता के रूप में केन्द्रीय बैंक, तरलता (नकदी) की कमी के दौरान वाणिज्यिक बैंकों को तरलता (नकदी) मुहैया कराता है। केन्द्रीय बैंक द्वारा यह सुविध अपनी कटौती (बट्टा) खिड़की के माध्यम से मुहैया करायी जाती है। वाणिज्यिक बैंक वाणिज्यिक बिलों,सरकारी प्रतिभूतियों, कोषागार बिलों एवं अन्य अर्ह प्रपत्रों जैसी सपार्श्विक प्रतिभूतियों के प्रति केन्द्रीय बैंक की बट्टा खिड़की से उधार ले सकते हैं। कुछ केन्द्रीय बैंक बिना किसी संपार्श्वि प्रतिभूतियों के भी वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कतिपय क्षेत्रकों (निर्यात ऋणों ,कृषि ऋणों) को दिए गए ऋणों के पुनर्वित्तीयन के रूप में उपलब्ध थी। इस सुविधाके अन्तर्गत वाणिज्यिक बैंक स्वयं के द्वारा कतिपय विशिष्ट क्षेत्रकों को वितरित ऋणों की राशि के एक निश्चित (जिसे रिजर्व बैंक समय-समय पर निश्चित करता है) के बराबर धनराशि भारतीय रिजर्व बैंक से उधार ले लेता। भारतीय रिजर्व बैंक क्षेत्रक विशिष्ट पुनर्वित्तीय सुविधाओं को क्षेत्रक विशेष की उधार देने को प्रोत्साहन देने या न देने के रूप में साख नीति के एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त करता था। इसके लिए पुनर्वित्तीयन की शर्ते एवं दशाएं रिजर्व बैंक द्वारा ही तय की जाती थी। तथापि वित्तीय क्षेत्रक सुधारोंके अनुरूप, भारतीय रिजर्व बैंक ने साख के प्रत्यक्ष एवं सूक्ष्म प्रबन्धनसे स्वयं को अलग कर लिया है। तदनुसार, अप्रैल 1999 से अन्तरिमतरलता समायोजन सुविधा के तहत क्षेत्रक विशिष्ट पुनर्वित्तीय योजनाओं (निर्यात साख पुनर्वित्तीयन योजना को छोड़कर) को संपार्श्विक उधार लेने की सुविधा द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है जिसके तहत वाणिज्यिक बैंक कतिपय सीमा तक बैंक दर या इससे अधिक ब्याज दर पर भारतीय रिजर्व बैंक से उधारले सकते हैं। जून 2000 से संपार्श्विक उधार लेने की सुविधा भी बन्द कर दी गयी। वर्तमान में बैंकों को वित्तीय संसाधन मुहैया कराता है। अतिरिक्त रूप से सरकारी प्रतिभूतियों एवं कोषागार बिलों की संपार्श्विक जमानत पर प्राथमिक डीलरों को भी उधार लेने की सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। रूपया निर्यात साख की पुनर्वित्तीयन सुविधा अभी भी जारी है।

तरलता समायोजन सुविधा

मुद्रा बाजार दरों को प्रभावी तरीके से नियन्त्रित करने के लिए तथा मौद्रिक नीति के प्रत्यक्ष उपकरणों से अप्रत्यक्ष उपकरणों की ओर बढ़ते हुए बैकिंग क्षेत्रक सुधारों पर नरसिंहम समिति द्वितीय (1998) ने सभी प्रकार की सामान्य एवं क्षेत्रक विशिष्ट पुनर्वित्तीयन सुविधाओं को वापस लेने तथा रेपो और रिवर्स रेपो परिचालनों के द्वारा संचालित होने वाली तरलता समायोजन सुविधा की ओर बढ़नेका सुझाव दिया था। तदनुसार 21 अप्रैल 1999 से प्रभावी अन्तरिम तरलता समायोजन सुविधा प्रारम्भकी गयी जिसके अनुसार रूपया निर्यात पुनर्वित्तीयन सुविधाको यथावत रखते हुए सामान्य पुनर्वित्तीयन सुविधा को संपार्श्विक सुधार देने की सुविधा द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। इस सुविधा के अन्तर्गत वाणिज्यिक बैंक अपने पाक्षिक औसत कुल बकाया निक्षेपों के 0.25 प्रतिशत तक बैंक दर पर दो सप्ताह तक की अवधि के लिए उधार ले सकतेहैं। अतिरिक्त संपार्श्विक तरलता सुविधा बैंकों को 1997-98 में औसत बकाया पाक्षिक सकल निक्षेपों का 0.25 प्रतिशत तक उधार लेने की अनुमान्यता प्रदान करती थी। यह सुविधा बैंक दर के ऊपर 2 प्रतिशत अधिक दर पर दो सप्ताह की अतिरिक्त अवधि के लिए थी। संपार्श्विक तरलता सुविधा के अन्तर्गत ब्याज दर बैंकदर +2 प्रतिशत था अतिरिक्त संपार्श्वि तरलता सुविधा के अन्तर्गत बैंक दर + 4 प्रतिशत थी। इसके साथ-साथ प्राथमिक डीलरों को संपार्श्वि सरकार/प्रतिभूतियों के प्रति बैंक दर पर 90 दिन की अवधि के लिए उधार लेने की सुविधा अनुमन्य थी।

जून 2000 में अन्तरिम तरलता समायोजन सुविधा को पूवर्णरूपेण तरलता समायोजन सुविधा से प्रतिस्थापित कर दिया गया। तरलता समायोजन सुविधा प्रारम्भ हो जाने के साथ ही संपार्श्विक तरलता सुविधा तथा अतिरिक्त संपार्श्विक तरलता सुविधा को वापस ले लिया गया तथा मौद्रिक प्रणाली में तरलता प्रबन्धन हेतु भारतीय रिजर्व बैंक रेपो एवं रिवर्स रेपो नीलामी का सहारा लेने लगा। प्रारम्भ में भारतीय रिजर्व बैंक परिवर्तनीय दर रेपो की नीलामी 1से 14 दिन की अवधि के लिए करता था, लेकिन बाद में स्थिर दर पर रेपो की नीलामी केवल एक दिन की अवधि (शुक्रवार को तीन दिन की अवधि) के लिए की जाने लगी। तथापि, 14 दिन तक की लम्बी अवधि तक के लिए परिवर्तनशील रेपो दरो को लागू करने का अधिकार भारतीय रिजर्व बैंक के पास है। पहले की प्रणाली में भारतीय रिजर्व बैंक नकदी प्रारक्षित अनुपात तथा खुले बाजार की क्रियाओं के द्वारा मौद्रिक प्रणाली में तरलता को नियन्त्रित करता था। इसके तहत भारतीय रिजर्व बैंक या तो नकदी प्रारक्षित अनुपात में परविर्तन लाकर तरलता की मात्रा को प्रभावित करता था, या खुले बाजार क्रियाओं के द्वारा ब्याज दरों के माध्यम से साख की लागत को प्रभावित करता था। लेकिन तरलता समायोजन सुविधा लागू कर दिए जाने के बाद, ब्याज दरों पर भारतीय रिजर्व बैंक का नियन्त्रण रेपो दर/ रिवर्स रेपो दर के बीच एक ऐसा अनौपचारिक गलियारा उपलब्ध कराता है जिसके बीच मुद्रा बाजार ऊपर-नीचे होता रहता है। इस दृष्टि से रेपो दर मुद्रा बाजारकी ब्याज दर की न्यूनतम सीमा तथा इससे 100 बिन्दु ऊपर की रिवर्स दर उच्चतम सीमा कही जा सकती है।

भारत में मौद्रिक नीति

मौद्रिक नीति की एक मौद्रिक नीति ढ़ाँचे के अन्तर्गत लागू किया जाता है। इस ढ़ाँचे में निम्नलिखित घटक शामिल हैं : (अ) मौद्रिक नीति के उद्देश्य, (ब) मौद्रिक नीति के विश्लेषण (जो पारेषण यान्त्रिकी) पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, तथा (स) परिचालनात्मक प्रक्रिया (परिचालनात्मक लक्ष्य एवं उपकरण)। इस खण्ड में, भारतीय संदर्भ में इन्हीं पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

मौद्रिक नीति के उद्देश्य

कीमत स्थिरता (या मुद्रा स्फीति नियन्त्रण) एवं आर्थिक संवृद्धि को बनाए रखना ही सारे विश्व में केन्द्रीय बैंकों द्वारा सामान्तया अपनाए जाने वाले उद्देश्य हैं। नब्बे के दशक में अनेक देशों (ब्राजीज, मेक्सिको, अर्जेन्टाइना, द. कोरिया एवं दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में विशेष रूप से) उपजे बड़े पैमाने के वित्तीय संकट को देखते हुए वित्तीय स्थिरता प्राप्त करने के लिए ऐसे संकटों से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की रक्षा करना तथा यथासम्भव ऐसे संकटों के दुष्प्रभावों को अन्य अर्थव्यवस्थाओं में न होने देना मौद्रिक नीति का एक अतिरिक्त उद्देश्य हो गया तथापि, इन समस्त उद्देश्यों को एक साथ प्राप्त कर पाना प्राय: सम्भव नहीं हो पाता। ऐसा इसलिए कि मौद्रिक नीति उद्देश्य आपस में निकटता के साथ सम्बन्धित है। उदाहरण के तौर पर, मुद्रा स्फीति और बेरोजगारी के बीच संघर्ष की स्थिति रहती है- ऊँची बेरोजगारी कीमत पर मुद्रा स्फीति में कमी लायी जा सकती है। इसी प्रकार का सम्बन्ध अन्य उद्देश्यों के बीच भी विद्यमान है। इस प्रकार,बहु-उद्दश्यों को दृष्टिगत रखते हुए, जो कि सभी समान रूप से आवश्यक है, विद्वान और नीति-निर्माता इस बात पर सहमत हैं कि मौद्रिक नीति कीमत स्थिरता पर लक्षित होनी चाहिए तथा संवृद्धि और रोजगार को राजकोषीय एवं अन्य नीतियों के लक्ष्य के रूप में छोड़ दिया जाना चाहिए। यद्यपि अनेक विकसित देशों में कीमत स्थिरता ही मौद्रिक नीति का एकमात्र उद्देश्य है, तथापि संयुक्त राज्य अमरीका इसका एक उल्लेखनीय अपवाद है जहाँ अधिकतम रोजगार, स्थिर कीमतों एवं दीर्घकालीन सामान्य ब्याज दर को मौद्रिक नीति के उद्देश्यों में शामिल किया जाता है।

मौद्रिक नीति के उद्देश्यों के सम्बन्ध में भारतका दृष्टिकोण देश की जमीनी वास्तविकताओं को ध्यानमें रखते हुए रहा है। तदनुसार, कीमत स्थिरता को बनाए रखना तथा अर्थव्यवस्था के उत्पाद क्षेत्रों के प्रति साख के यथोचित प्रवाह को बनाए रखना (आर्थिक संवृद्धि को बनाए रखना) मौद्रिक नीति के बड़े उद्देश्य रहे हैं। तथापि, किसी वर्ष विशेष की विशिष्ट परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए, इन दोनों उद्देश्यों को सापेक्षिक महत्तव वर्ष से वर्ष के बीच बदलता रहा है। आर्थिक सुधारेतर काल में, सामान्य तौर पर यह स्वीकार कर लिया गया है कि भारत जैसी खुली अर्थव्यवस्था के लिए, कीमत स्थिरता बनाए रखना अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मुद्रास्फीति लाने वाले घरेलू कारकों के अतिरिक्त, विदेशी मुद्रा स्फीति अपने आप ही देश में आयातित हो जाती है, यदि सुरक्षा के उचित उपाय न किए जाएं तो। इसलि, धीरे-धीरे यह मान लिया

गया है कि केन्द्रीय बैंक को कीमत स्थिरता को लक्ष्य बनाना चाहिए क्योंकि यदि मुद्रा स्फीति की दर सहनीय सीमा से बाहर चली जाती है। इससे अन्तत: वास्तविक संवृद्धि खतरे में पड़ जाएगी।

मौद्रिक नीति के विश्लेषक

मुद्रा स्फीति पर संवृद्धि जैसे अन्तिम उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए मौद्रिक हस्तक्षेप की प्रक्रिया को 'मौद्रिक पारेषण यान्त्रिकी कहा जाता है। पारेषण यान्त्रिकी या पारेषण चैनल के चार तरीके हैं (अ) परिमाणात्मक चैनल (जैसे कि मुद्रा आपूर्ति तथा साख से सम्बन्धित), (ब) ब्याज दर चैनल,(स) विनिमय दर चैनल, तथा (द) आस्ति कीमत चैनल। किसी अर्थव्यवस्था विशेष में इन चैनलों का सापेक्षिक महत्तव अर्थव्यवस्था विशेष में इन चैनलों का सापेक्षिक महत्त्व अर्थव्यवस्था के विकास के स्तरों एवं इसकी अन्तर्निहित वित्तीय ढ़ाँचे पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ एक खुली अर्थव्यवस्था के लिए विनिमय दर चैनल के महत्त्वपूर्ण होने की अपेक्षा की जाती है, वही परिमाणात्मक चैनल महत्वपूर्ण हो सकता है। जहाँ वाणिज्यिक बैंक वित्तक बड़े स्रोत हैं, इनमें से कोई भी चैनल अकेले ही स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करता, वरन इनके बीच महत्त्वपूर्ण ढंग से अन्त: क्रिया भी होती रहती है।

परिचालनात्मक प्रक्रिया : उपकरण एवं लक्ष्य

मौद्रिक नीति का दिन-प्रतिदिन का कार्यान्वय मौद्रिक नीति परिचालनात्मक प्रक्रिया कहलाता है। मौद्रिक नीति कतिपय मध्यवर्ती लक्ष्यों के द्वारा अपने अन्तिम उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करती है (जैसेकि कीमत स्थिरता, वंवृद्धि आदि) विनिमय दर, मुद्रा आपूर्ति संवृद्धि तथा ब्याज दर का एक स्तर मध्यवर्ती लक्ष्य हो सकते हैं, भारतीय रिजर्व बैंक ने इस तथ्य को स्वीकार कर लियाहै (विशेष रूप से नब्बे के दशक में) कि मुद्राफलन हेतु माँग भारत में लगभग स्थिर है और इसी को मानते हुए मुद्रा आपूर्ति संवृद्धि के एक वांछित स्तर (बृहत मुद्रा या ड $_3$) को मध्यवर्ती लक्ष्य के रूप में निर्धारित कर दिया गया। तदनुरूप, भारतीय रिजर्व बैंक ने आगे की अवधि के लिए मुद्रा आपूर्ति (बृहत मुद्रा) संवृद्धि के वांछित लक्ष्य निर्धारित किए तथा मौद्रिक एवं साख नीति पर गवर्नरके बयान के माध्यम से सार्वजनिक किया। मुद्रा आपूर्ति की यह संवृद्धि दर सकल घरेलू उत्पाद की अपेक्षित संवृद्धि दर तथा मुद्रा स्फीति के एक सहनीय स्तर को ध्यान में रखकर निर्धारित की गयी। बृहत मुद्रा में संवृद्धि के दिए हुए अपेक्षित स्तर पर प्रारक्षित मुद्रा में प्रसार का निर्धारण मुद्रागुणक द्वारा होता है। तथापि बृहत मुद्रा की लक्षित दर का निर्धारण करने में किसी वर्ष विशेष में राजकोषीय स्थिति तथा बाह्य क्षेत्रक की स्थिति को भी ध्यान में रखा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी वर्ष राजकोषीय घाटा बढ़ जाता है और इस बढ़े हुए राजाकोषीय घाटे का वित्तीयन सरकार द्वारा बाजारों से उधार लेकर किया जाता है तो प्रारक्षित मुद्रा प्रसार के लक्ष्य को संशोधित कर दिया जाता है ताकि सरकार की बढ़ी हुई बाजार उधारी को समायोजित करने के लिए तरलता में अधिक वृद्धि को अनुमन्य किया जा सके। यदि

ऐसा नहीं किया जाता तो आर्थिक प्रणाली में तरलता (नकदी) की कमी होगी,जिसके परिणामस्वरूप ब्याज दरों में ऊपर की और दबाव बढ़ेगा।

मौद्रिक नीति के उपकरण

केन्द्रीय बैंक इन मध्यवर्ती लक्ष्योंको (उदाहरणार्थ, बृहत मुद्रा प्रसार) प्राप्त करने के लिए मौद्रिक नीति उपकरणों का सहारा लेता है। ये उपकरण दो प्रकार के होते हैं – प्रत्यक्षएवं परोक्ष। नकदी प्रारक्षित अनुपात (सी.आर.आर), तरलता प्रारक्षित अनुपात (एल.आर.आर.), प्रत्यक्ष साख तथा प्रशासित ब्याज दरों को प्रत्यक्ष उपकरणों में शामिल किया जाता है। नकदी प्रारक्षित अनुपात वाणिज्यिक बैंकों की देयताओं (निक्षेपों) का वह प्रतिशत है जिसे बैंक नकदी के रूप में अपने पास या केन्द्रीय बैंक के पास बनाए रखते हैं। भारत में सांविधिक तरलता अनुपात (एस.एल.आर.) बैंकों के पास कुल निक्षेपों की वह आनुपातिक धनराशि है जिसे बैंकों को अनिवार्यत: सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करना होता है। प्रत्यक्ष साख का प्रयोग पसन्दीदा/प्राथमिक क्षेत्रकों को साख के प्रवाह को बनाए रखने के लिए किया जाता है। प्रशासित ब्याज दरों का प्रयोग सीधे-सीधे उधार देने तथा निक्षेपों की ब्याज दरों को नियन्त्रित करने के लिए किया जाता है। प्रशासित ब्याज दरों को छोड़कर शेष सभी प्रत्यक्ष उपकरण साख उपलब्धता के परिमाण में परिवर्तन के द्वारा वित्तीय प्रणाली को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। उराहरणार्थ, नकदी प्रारक्षित अनुपात या सांविधिक तरलता अनुपात में कमी किए जाने से वित्तीय प्रणाली में तरलता की एक निश्चित मात्रा अवमुक्त होती है जिससे आगे चलकर दरों में परिवर्तन करना पड़ता है।

इसके विपरीत, अप्रत्यक्ष उपकरणों को सामान्यत: कीमत मार्ग से संचालित किया जाता है। अर्थात ये उपकरण पहले तो दरों (या कीमतों) में परिवर्तन लाते हैं और इसके फलस्वरूप साख/नकदी के प्रवाह में परिवर्तन आता है। रेपो (पुनर्खरीद विकल्प), खुले बाजार की क्रियाएं, पुनर्वित्तीयन सुविधा, भारतीय रिजर्व की बट्टा खिड़की आदि मौद्रिक नीतिके अप्रत्यंक्ष उपकरण हैं। पुनर्खरीद विकल्पों/प्रति-पुनर्खरीद विकल्पों का प्रयोग अल्पकाल में अर्थव्यवस्था में से नकदी को खींचे या नकदी बढ़ाने के लिए किया जाता है। खुले बाजार की क्रियाओं का प्रयोग उस समय किया जाता है जब केन्द्रीय बैंक दीर्घकाल के लिए नकदी दशाओं में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। रिजर्व बैंक द्वारा इन दोनों ही उपकरणों का प्रयोग उस समय किया जाता है जब केन्द्रीय बैंक दीर्घकल के लिए नकदी दशाओं में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। रिजर्व बैंक द्वारा इन दोनों ही उपकरणों का प्रयोग अपने स्वयं के विवेक से किया जाता है। इसके विपरीत स्थायी सुविधाएं (अर्ह नियात साख का पुनर्वित्तीयन) तथा बट्टा खिड़की सुविधा (बिलों की पुनर्कटौती या बैंको द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक से उधार लेना) का प्रयोग वाणिज्यिक बैंक अपने विवेक से करते हैं।

प्रत्यक्ष उपकरण जहाँ अधिक प्रभावी है (इन उपकरणों में कोई भी परिवर्तन मध्यवर्ती लक्ष्यों में तत्काल परिवर्तन लाता है, वहीं वे बाजार में अदक्षता लाते हैं। उदाहरणार्थ, नकदी प्रारक्षित अनुपात में कोई भी वृद्धि (आर्थिक प्रणाली में नकदी को कम करने के उद्देश्यों से) देश के सभी बैंकों पर लागू होती है और इसीलिए बैंकों के अच्छे तरलता प्रबंन्धन को दण्डित करती है। बाजार आधारित प्रणाली के अप्रत्यक्ष उपकरण ही अधिक उचित हैं। तथापि, अप्रत्यक्ष उपकरणों की प्रभावशीलता सहायक वित्तीय तथा संस्थानों के विकास के स्तरपर निर्भर करती है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विनियमनों को इस प्रकार लागू किया गया है कि अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति के अप्रत्यक्ष उपकरणों के परिचालन की दशाएं अनुकूल हो जाएं और इसी के अनुरूप भारतीय वित्तीय बाजारोंकी संरचना में धीरे-धीरे परिवर्तन परिलक्षित हुआ है।

परिचालनात्मक लक्ष्य

कीमत स्थिरता तथा/या संवृद्धि जैसे बहुत उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मौद्रिक नीति के उपकरण किसी चर के जिस स्तर विशेष को प्राप्त करना चाहते है, उसे परिचालनात्मक लक्ष्य के रूप में जाना जाता है। सामान्यतया, बैंक प्रारक्षित निधियों (रिजर्वों) और/या रात-भर की अन्तर-बैंक माँग मुद्रा दर जैसे अति अल्पकालीन ब्याज दर को इन परिचालनात्मक लक्ष्यों में शामिल किया जाता है। अस्सी के दशक के अन्तिम वर्षों से भारतीय रिजर्व बैंक ने बृहत मुद्रा प्रसार के अपेक्षित स्तर को प्राप्त करने के लिए बैंक प्रारक्षित निधियों (रिजर्वों) को लक्षित करने की प्रवृत्ति अपनायी है। तथापि, सुधारों के परिणामस्वरूप वित्तीय क्षेत्रक में आए संरचनात्मक परिवर्तनों के चलते ब्याज दरों के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाने की दृष्टि से यह महसूस किया गया है कि बैंक प्रारक्षित निधियों (रिजर्वो) का लक्ष्य निर्धारित कर पाना अदक्ष होगा। सम्भवत: इसीलिए भारतीय रिजर्व बैंक ने अप्रैल 1998 से बहुत सूचक आधारित उपागम को अपनाया जहाँ विभिन्न बाजारों की ब्याज दरों एवं प्रवाहों का अनुश्रवण करते हुए लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है।

नब्बे के दशक के प्रारम्भ में मौद्रिक नीति

आर्थिक सुधार प्रारम्भ किए जाने से पूर्व, नब्बे के दशक के प्रारम्भ तक, भारतीय वित्तीय बाजार विभिन्न खण्डों में बंटा हुआ था और इन खण्डों के बीच अति न्यून अन्तरसम्बन्ध (यदि कोई थे भी तो) ही थे। मुद्रा बाजार था तो लेकिन उससे गहराई और तरलता की कमी थी। निक्षेपों, साख एवं सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज दरें अजि विनियमित थी। ऊँचे तरलता अनुपात के माध्यम (नब्बे के दशक के प्रारम्भ तक 38.5 प्रतिशत) सरकार बाजार दरों से काफी नीची दर पर बैंकों की निक्षेप निधियों का बड़ा हिस्सा प्रयुक्त कर रही थी। बैंकिंग क्षेत्रक को उधार देय संसाधनों का एक अन्यमहत्वपूर्ण हिस्सा रियायती ब्याज दर पर प्राथमिक क्षेत्र को जा रहा था।

सरकारके राजकोषीय घाटे के वित्तीयन हेतु तदर्थ कोषागार बिलों का प्रयोग करने की प्रणाली का मौद्रिक नीति को संचालित करने पर घातक प्रभाव पड़ा। मूलरूप से तदर्थ कोषागार बिलोंका अभिकल्पन सरकार द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक से अल्पकालीन साख प्राप्त करने के लिए किया गया था। धीरे-धीरे पुराने तदर्थ बिलों को चुकाने के लिए नए तदर्थ कोषागार बिल जारी किए जाने लगे तथा इस प्रकार बिना राजकोषीय प्रयासों से अधिक बिल प्राप्त किया जाने लगे। कोषागार बिल बाजार में न बेच कर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अपने पास ही रखे जाते थे। इससे इनको जारी करते ही बाजार में मुद्रा आपूर्ति बढ़ जाती थी। यदि भारतीय रिजर्व बैंक ने इन कोषागार बिलों को बाजार में बेच दिया होता तो इसका अर्थ बाजार की क्रय शक्ति सरकार को हस्तान्तरित हो जाने के रूप में होता और आर्थिक प्रणाली में अतिरिक्त क्रयशक्ति नहीं बढ़ पाती। इतना ही नहीं तात्कालिक परिस्थितियों में भले ही भारतीय रिजर्व बैंक तदर्थ कोषागार बिलों की पुन: बिक्री करने की स्थिति में न रहा हो, यदि सरकार ही इन कोषागार बिलों का भुगतान समय से कर देती तो इतनी ही मात्रा में मुद्रा आपूर्ति में कमी हो जाती। लेकिन पुराने तदर्थ कोषागार बिलों के स्थान पर नए कोषागार बिलों तथा नई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अतिरिक्त तदर्थ कोषागार बिलों को जारी करते रहने से बाजर में मुद्रा आपूर्ति बढ़ती रही। इस प्रकार सरकार के राजकोषीय घाटे का वित्तीयन स्वचालित तरीके से मुद्रा के सृजन द्वारा होता रहा। इस प्रक्रिया में सरकारी घाटे के स्वत: मौद्रीकरण की संज्ञा दी जाती है। तदर्थ कोषागार बिलों के अतिरिक्त भारतीय रिजर्व बैंक ऐसी सभी दिनांकित सरकारी प्रतिभूतियां भी खरीद लेती थी जो बाजार में बिकने से रह जाती थी। इन दोनों घटकों (भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा तदर्थ कोषागार बिलों एवं दिनांकित सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय) की कुल धनराशि केन्द्र सरकार को भारतीय रिजर्व बैंक की निबल साख थी और इस धनराशि में किसी समयावधि में कोई भी वृद्धि प्रारक्षित मुद्रा में वृद्धि के रूप में परिलक्षित होती थी।

सरकार के घाटे के स्वचालित मौद्रीकरण की प्रक्रिया ने कीमतों पर ऊर्ध्वकारी दबाव डाला। इससे साठ के दशक से लेकर नब्बे के दशक के प्रारम्भिक वर्षों तक (अस्सी के दशक के पहले पाँच वर्षों को छोड़कर) मुद्रा स्फीत की दर अविरत आधार पर ऊँची रही। यह और बात है कि इस ऊँची मुद्रा स्फीति दर में सन् 1973के कच्चे तेल की कीमतों में हुई भारी वृद्धि का भी योगदान था। स्वचालित मौद्रिक प्रसार का कीमतों पर प्रतिकूल प्रभाव रोकने के लिए नकदी प्रारक्षित अनुपात को 1970 के दशक प्रारम्भ में मात्र 3 प्रतिशत से बढ़कर नब्बे के दशक के प्रारम्भ में 15 प्रतिशत के उच्चतम स्तरतक ले आया गया।

सरकारी घाटे के स्वत: मौद्रिकरण के अलावा, साठ, सत्तर एवं अस्सी के दशक की सम्पूर्ण अवधियों में केन्द्र सरकार के बढ़ते घाटे की भरपायी बैंकिंग प्रणाली द्वारा सरकार के उधार लेने के कार्यक्रम को सहायता देकर की गयी। प्रारम्भ में उधारों की लागत को कम करने के नाम पर ब्याज दरों को काफी नीचे रखा गया। लेकिन बाद में, इनको अधिकाधिक आकर्षक बनाने के लिए ब्याज दरों को बढ़ाया गया। ब्याज दरों को बढ़ाने से भी जब बैंकिंग प्रणाली से सरकार को पर्याप्त वित्तीय सहायता नहीं मिल सकी तो धीरे-धीर

सांविधिक तरलता अनुपात को बढ़ाकर नब्बे के दशक के प्रारम्भ में 36.5 प्रतिशत के स्तर तक ले आया गया।

लगातार बढ़ती मुद्रा आपूर्ति की इन परिस्थितियों में मौद्रिक नीति के क्रियाशील होने के लिए स्थान सीमित ही था। राजकोषीय घाटे के स्फीतिकारी प्रभावको निष्प्रभावी बनाने के लिए मौद्रिक नीति प्रत्यक्ष उपकरणों विशेष रूप से नकदी प्रारम्भिक अनुपात पर ही केन्द्रित रही। इस प्रकार राजकोषीय नीति के सापेक्ष मौद्रिक नीति को गौण स्थान ही प्राप्त रहा।

नब्बे के दशक के प्रारम्भ में नकदी प्रारक्षित अनुपात तथा सांविधिक तरलता अनुपात, दोनों ही अपनी उच्चतम सीमा के स्तर तक पहुँच गये और इस प्रकार लगातार मौद्रिक प्रसार के अभिलक्षणों वाले आर्थिक वातावरण में मौद्रिक नीति के उपकरणों के रूप में अपनी प्रभावकारिता खो बैठे। इस तरह नब्बे के दशक के आते-आते स्थिति अपोषणीय हो गयी और सुधार अपरिहार्य हो गए।

नब्बे के दशक के उत्तरार्द्ध और उसके बाद की अवधि में मौद्रिक नीति

वित्तीय क्षेत्रक में सुधारों के बाद मौद्रिक नीतिके व्यवहार में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है। परिचालनात्मक लक्ष्यों सहित मौद्रिक नीति के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों में परिवर्तन अलावा, प्रत्यक्ष उपकरणों के स्थान पर अप्रत्यक्ष उपकरणों को अपनाने पर अधिक बल दिया जाने लगा है। यह परिवर्तन वित्तीय बाजारों की संरचना में किए गए महत्त्वपूर्ण सुधारों के द्वारा ही सम्भव हो पाया गया है।

1997-98 तक, भारत में मौद्रिक नीति बृहत मुद्रा के प्रसार के साथ, मध्यवर्ती लक्ष्य के रूप में संचालित होती रही है। बृहत मुद्रा की वांछित संवृद्धि दर सकल घरेलू उत्पाद की अपेक्षित संवृद्धि दर तथा मुद्रा स्फीति की प्रक्षेपित दर को ध्यान में रखकर निर्धारित होती रही है। वित्तीय क्षेत्रक में सुधारों से मौद्रिक नीति की पारेषण यान्त्रिकी में जो परिवर्तन आया है उसमें ब्याज दर को अधिक प्रमुखता प्राप्त हुई है। 1998-99 से इससे पहले के दृष्टिकोण को बहुसूचक आधारित दृष्टिकोण से प्रतिस्थापित कर दिया गया है। इसका अर्थ यह है कि M_3 या बैंक प्रारक्षित निधियों की लक्षित संवृद्धि का निर्धारण सीधे-सीधे सकल घरेलू उत्पाद तथा मुद्रा स्फीति की वांछित दर को ध्यान में रखकर ही नहीं किया जाता, वरन अर्थव्यवस्था के अन्य चरों – विभिन्न प्रकार के बाजारों (मुद्रा बाजार, प्रतिभूतियाँ बाजार, सरकारी प्रतिभूतियाँ बाजार) में प्रतिफल की दरों, साख संवृद्धि, विनिमय दर, पूँजी प्रवाह आदि की हालिया प्रवृत्तियों के आलोक में किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यद्यपि बैंक प्रारक्षित निधियाँ परिचालनात्मक लक्ष्य बने रहते हैं तथापि वित्तीय प्रणाली को सही ढंग से कार्य करते रहने देने के लिए अन्य दरों एवं प्रवाहों को भी लक्षित किया जाता है।

प्रत्यक्ष उपकरणों के स्थान पर अप्रत्यक्ष उपकरणों को प्रयुक्त किया जाना सावधानीपूर्वक तैयार किए गए तथा सही क्रमागत रूप से लागू किए गए निम्नलिखित सुधारों से सम्भव हो पाया है:

अ) आर्थिक प्रणाली में नकदी को प्रवाहित करने/अवशोषित करने के लिए बाजार आधारित यांत्रिकी को विकसित करने के लिए खुले बाजार की क्रियाओं (पुन: खरीद विकल्प सहित) को वर्ष 1992-93 से फिर से क्रियाशील कर दिया गया,

ब) तरलता (नकदी) समायोजन सुविधा अप्रैल 1999 एवं जून 2000 में दो चरणों में प्रारम्भ की गयी। तरलता समायोजन सुविधा के अन्तर्गत भारतीय रिजर्व बैंक अब आर्थिक प्रणाली में प्रति पुनर्खरीद विकल्पों के द्वारा दैनिक आधार पर तरलता को नियन्त्रित कर पाने की स्थिति में है। पूर्व की संरचना में यह असम्भव था जब नकदी प्रारक्षित अनुपात ही रतलता को नियन्त्रित करने का प्राथमिक उपकरण था। तरलता अतिरेक की स्थिति में भारतीय रिजर्व बैंक निश्चित पुनर्खरीद विकल्प दर वर्तमान में में 6.5 प्रतिशत) तरलता को अवशोषित कर लेता है तथा प्रति पुनर्खरीद विकल्प दर (पुनर्खरीद विकल्प दर से 100 आधार बिन्दु ऊपर) द्वारा तरलता की कमी के दौरान बाजार में नकदी प्रवाहित कर देता है। इस प्रकार, ये दोनों दरें एक ऐसा अनौपचारिक गलियारा उपलब्ध कराती हैं जिसके बीच माँग मुद्रा दरें एवं अन्य अल्पकालीन दरें उच्चावचित होती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जब मांग मुद्रा दर रेपो दर (पुनर्खरीद विकल्प) से नीचे जाती है तो वाणिज्यिक बैंक माँग मुद्रा बाजार से निधियाँ उधार लेकर उसे निश्चित रेपो दर पर भारतीय रिजर्व बैंक के पास जमा करके कुछ लाभ अर्जित कर पाना सुनिश्चित कर लेते हैं। इसी प्रकार, यदि माँग मुद्रा दर रिवर्स रेपो दर (प्रति पुनर्खरीद विकल्प दर) से ऊँची रहती है तो बैंक भारतीय रिजर्व बैंकसे रिवर्स रेपो दर पद उधार लेकर उसे माँग मुद्रा बाजार में उधार लेकर कुछ न कुछ लाभ सुनिश्चित कर सकते है।

स) अप्रैल 1997 में बैंक दर को फिर से क्रियाशील किया गया। प्रारम्भ में, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विस्तारित सभी वित्तीय समायोजन इसी दर से सम्बद्ध थे। तरलता समायोजन सुविधा लागू किए जाने तथा रेपो/रिवर्स रेपो बाजार के शनै: शनै: विकसित होते जाने के साथ ही बैंक दर को भारतीय रिजर्व बैंक को दृष्टिकोण से बाजार की ब्याज दरों के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा।

द) मौद्रिक नीत को राजकोषीय नीति चंगुल से मुक्त कराने के लिए, जून 1992 में बाजारी उधार लेने के केन्द्र सरकार के कार्यक्रम के लिए नीलामी प्रणाली प्रारम्भ की गयी। इसके बाद से राजकोषीय घाटे का बढ़ता हुआ भाग बाजार निर्धारित ब्याज दरों पर लिए गए बाजारी उधारों से पूर्ण किया जाता है। तदर्थ कोषागार बिलों की प्रणाली वर्ष1996-97 में समाप्त कर दी गयी तथा कोषागार बिलों द्वारा राजकोषीय घाटे का स्वचालित मौद्रिकरण अप्रैल 1997 से बन्द कर दिया गया।

य) उधार देने की दरोंको पहले तथा निक्षेप दरों को उसके बाद विनियमित करके ब्याज दरों को धीरे-धीरे विनियमित किया गया। सितम्बर 1991 में प्रारम्भ करके विभिन्न क्षेत्रकों को वितरित किए जाने वाले विभिन्न आकार के ऋणों पर बहुब्याज दरों की उपचारित प्रणाली धीरे-धीरे वापस ले ली गयी (कृषि, लघु उद्योगों एवं निर्यात साख को छोड़कर)। उधार देने की न्यूनतम ब्याज दर की व्यवस्था को वापस

लेते हुए वाणिज्यिक बैंकों को 2 लाख रूपय से ऊपर के ऋणों पर ब्याज दर का निर्धारण स्वयं करने का अधिकार अक्टूबर 1994 से दे दिया गया। इसी के साथ,बैंकों द्वारा अपनी मुख्य उधारी दर को घोषित करना भी अनिवार्य बना दिया गया। बाद में, अलग-अलग परिपक्वताओं वाले ऋणों के लिए अलग अलग मुख्य उधारी दरे निर्धारित करने की अनुमति बैंक को दी गयी। इतना ही नहीं बैंक अपने उच्च साख वाले ग्राहकों को मुख्य उधारी दर से नीची ब्याज दर पर भी ऋण दे सकते है।

र) विभिन्न परिपक्वताओं के निक्षेपों पर बहु ब्याज दरें भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित किए जाने की व्यवस्था को एकल सीमा दर से प्रतिस्थापित करके अप्रैल 1992 में प्रारम्भ करके निक्षेप ब्याज दरों को भी विनिर्विनियमित कर दिया गया। इसके बाद अक्टूबर 1995 में दो वर्षसे अधिक की परिपक्वता वाले निक्षेपों, जुलाई 1996 में एक लाख रूपए से अधिक की परिपक्वता वाले निक्षेपों तथा अक्टूबर 1997 से सभी अवधियों के निक्षेपों के लिए ब्याज दरों की सीमा को धीरे-धीरे हटाया गया। वर्तमान में केवल बचत बैंक दर (मार्च 2003 से 3.5 प्रतिशत) का निर्धारण ही भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। अन्य सभी प्रकार के निक्षेपों पर ब्याज दरों का निर्धारण वाणिज्यिक बैंकों द्वारा स्वयं अपने स्तर से किया जाता है।

ल) बाजार आधारित अप्रत्यक्ष उपकरणों वाली मौद्रिक नीति की प्रभावकारिता हेतु ब्याज दरों की विनिर्विनियमन ही पर्याप्त नहीं है। इसकी सहायतार्थ अल्पकालीन निधियों के लिए अति सक्रिय बाजार जैसे वित्तीय बाजार के विलुप्त प्रखण्ड के विकसित होने की भी आवश्यकता है।

मौद्रिक नीति के सफल संचालन हेतु वित्तीय बाजार (जैसे कि मुद्रा बाजार) के अल्पकालीन प्रखण्ड का आकार एवं दक्षता भी महत्त्वपूर्ण है। इस बाजार की चौड़ाई एवं गहराई जितनी करने के लक्ष्य को प्राप्त करना उतना ही अधिक आसान होगा। मुद्रा बाजार जितना ही अधिक दक्ष होता है, परिचालनात्मक लक्ष्यों को प्रभावित कर पाने वाले मौद्रिक नीति उपकरणों को सक्रिय होने में उतना ही कम समय लगता है अर्थात् समायोजन गति उतनी ही अधिक होती है।

नब्बे के दशक के प्रारम्भ तक वित्तीय बाजारों के अल्प विकास की व्याख्या दो घटकों से की जा सकती है- वाणिज्यिक बैंक द्वारा अपने ग्राहकों को प्रदत्त नकदी साख सुविधा तथा कोषागार बिलों पर 4.6 प्रतिशत प्रतिफल की सुविधा।

नकदी साख सुविधा के अन्तर्गत उधार लेने वाले ग्राहकों को उनके अपने स्वयं के विवेकानुसार एक सीमा तक उधार लेने की स्वीकृति दी गयी। इस तरह, जब कभी भी उन्हें आवश्यकता हुई, उन्होंने साख सीमा के भीतर बैंकों से धन आहरित कर लिया और अपने पास अतिरेक होने पर उसे ब्याज सहित वापस जमा कर दिया। इस प्रणाली का सीधा सा अर्थ यह रहा कि निगमों को अपने स्तर से नकदी प्रबन्ध में अनुशासन लागू करने की जरूरत नहीं थी, यह दायित्व वाणिज्यिक बैंकों पर था। इसके परिणाम्स्वरूप अल्प-कालीन निधियों

के बाजार में गैर-बैंक निकायों, विशेष रूप से निगमित निकायों, की रूचि की कमी थी। कोषागार बिलों पर 4.6 प्रतिशत का सुरक्षित प्रतिफल अल्पकालीन निधि बाजार के विकसित न हो पाने का एक अन्य प्रमुख कारण था। अप्रैल1995 से नकदी साख प्रणाली के स्थान पर धीरे-धीरे ऋण प्रणाली लागू किए जाने के साथ ही, नकदी प्रबन्धन का दायित्व फिर से निगमित निकायों पर विवर्तित हो गया। अप्रैल 1997 से कोषागारबिलों पर सुरक्षित प्रतिफल की प्रणाली समाप्त हो जानेके साथ नकदी साख सुविधा समाप्त हो जाने से अल्पकालीन निधियों के बाजार के आकार एवं गहराई को विकसित होने का अवसर मिला।

1.5 विदेशी विनिमय बाजार

विदेशी विनिमय बाजार से आशय ऐसे बाजार से है जहाँ एक करेंसी दूसरी करेंसी से बदली जाती है या खरीदी/बेचीं जाती है। विदेशी विनिमय बाजार को संक्षिप्त में FOREX के नाम से भी जाना जाता है। विदेशी विनिमय बाजार दो प्रकार के होते हैं –

- अंतरराष्ट्रीय विदेशी करेंसी बाजार
- घरेलु विदेशी करेंसी बाजार

घरेलु विदेशी करेंसी बाजार देश के निवासियों की विदेशी करेंसी की आवश्यकता की पूर्ति करता है जबकि अंतरराष्ट्रीय विदेशी करेंसी बाजार अनिवासियों की। ज्यादातर विदेशी करेंसी का लेन-देन यूरो एवं यू.एस. डॉलर में होता है।

पिछले 50 वर्षों में अंतरराष्ट्रीय लेन-देन की मात्र बहुत ज्यादा बढ़ गई है। विदेशी विनिमय करेंसी को खरीदने और बेचने की क्षमता के बिना अंतरराष्ट्रीय व्यापार और निवेश संभव नहीं हो पता है।

करेंसियों का व्यापार विदेशी विनिमय बाजार में संपन्न होता है, जिसका प्राथमिक कार्य अंतरराष्ट्रीय व्यापार और निवेश को सुविधा प्रदान करना है, इसलिए बाजार के संचालन और मैकेनिज्म की जानकारी अंतरराष्ट्रीय प्रबंध की किसी भी बुनियादी समझ के लिए महत्वपूर्ण है।

विदेशी करेंसी बाजार वह बाजार है जिसमें विभिन्न देशों की करेंसियों को एक-दुसरे से खरीदा और बेचा जाता है। यह वह बाजार है जहाँ एक देश की करेन्सी को दुसरे देश की करेंसी से बदला जाता है। उदाहरण के लिए, एक भारतीय कंपनी अमेरिका को कपडा निर्यात करती है और भुगतान अमेरिकी डॉलर में पति है। निर्यातक इस डॉलर को अंतरराष्ट्रीय विनिमय बाजार में रुपए में बदलता है, यह विदेशी विनिमय है।

1.6 सारांश

समय के साथ, जैसे-जैसे वित्तीय बाजारों का विकास हुआ है, वैसे वित्तीय बाजारों के विभिन्न घटकों (अल्पकालीन ऋण बाजार, दीर्घ कालीन ऋण बाजार, विदेशी विनिमय बाजार) के बीच अन्तरसम्बन्ध बढ़े हैं। इससे परोक्ष उपकरणों के प्रयोग हेतु उपयुक्त दशाये उत्पन्न हुई हैं और इसके फलस्वरूप प्रत्यक्ष पर निर्भरता कम हुई है। अब वित्तीय बाजारोंके सुचारू संचालन हेतु भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा परोक्ष उपकरणों का प्रयोग अधिक किया जाने लगा है। इस उभरते परिदृश्य में खुले बाजार की क्रियाएं (दिनांकित सरकारी प्रतिभूतियों का खुलेआम क्रय-विक्रय) अपेक्षाकृत अधिक स्थायी प्रकृति के तरलता झटके को 'झेलने'के लिए प्राथमिक यन्त्र बन गयी हैं। अल्पकालीन तरलता झटके को विनियमित करने के लिए तरलता समायोजन सुविधा, जो रेपो/रिवर्स रेपो रोजमर्रा के क्रय-विक्रय से संचालित होती है, अब एक प्रमुख यन्त्र है।

1.7 बोध प्रश्न

1. वित्तीय प्रणाली से आप क्या समझते हैं? वित्तीय प्रणाली के कार्यों को समझाइए।
2. वित्तीय प्रणाली के मुख्य घटकों पर विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
3. मुद्रा बाजार क्या है? आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा बाजार का क्या महत्व है?
4. मुद्रा बाजार में भारतीय रिज़र्व बैंक किस प्रकार हस्तक्षेप करता है?
5. विदेशी विनिमय बाजार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
6. किसी देश की आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया में एक सुविकसित मुद्रा बाजार की भूमिका एवं महत्त्व का परीक्षण कीजिए।
7. भारत में मुद्रा बाजार के विभिन्न घटकों की विवेचना कीजिए। मुद्रा बाजार में भारतीय रिजर्व बैंक के हस्तक्षेप की यान्त्रिकी का भी परीक्षण कीजिए।
8. किसी अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति के उद्देश्यों के संक्षेप में बताएं। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अपनाए गए मौद्रिक नीति के उपकरणों एवं लक्ष्योंकी भी विवेचना कीजिए।

1.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

- Gomez, Clifford (2010), Financial Markets, Institutions and Financial Services, PHI Learning, New Delhi.
- Gordon, Natarajan (2010), Financial Markets and Services, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Kohn Meir (1999), Financial Institutions and Markets, Tata McGraw Hill, New Delhi.

इकाई - 2 बैंकिंग वित्तीय संस्थायें - I

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 बैंकिंग का परिचय
2.3 विकास और इतिहास
2.4 बैंकों की सेवायें
2.5 बैंकिंग में प्रौद्योगिकी
2.6 सारांश
2.7 बोध प्रश्न
2.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- बैंकिंग की मूल अवधारणा से अवगत होंगे।
- बैंकों द्वारा उपलब्ध सेवाओं एवं बैंकिंग में प्रौद्योगिकी को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

बैंक शब्द का प्रयोग काफ़ी समय से होता आ रहा है। ऐसा कहा जाता है कि यह इटेलियन भाषा के शब्द बैंकों से बना है, जो फ्रेंच भाषा के बैंके से बदलता हुआ अंग्रेजी भाषा में बैंक हो गया है। बैंकों का अर्थ बैंच होता हैं। चूँकि इटली में कुछ लोग बैंचों पर बैठकर मुद्रा परिवर्तन का कार्य किया करते थे तथा उनमें से किसी का व्यापार बंद होने पर उसकी बैंच को तोड़ दिया जाता था, अतः कालान्तर में बैंक शब्द का प्रयोग मुद्रा परिवर्तन करने वाली और बाद में साख की व्यवस्था करने वाली संस्थाओं के लिए किया जाने लगा। एक अन्य विचार यह है कि बैंक शब्द का स्रोत जर्मन भाषा का शब्द बैंक है, जिसका अर्थ सम्मिलित स्कन्ध कोष होता है। यह कठिन है कि बैंक शब्द का आरम्भ कैसे हुआ परंतु इसमें कोई संदेह नहीं है कि आधुनिक बैंकों का आरंभ यूरोप में ही हुआ और क्रमशः ये पूरे संसार में फैल गए।

2.2 बैंकिंग का परिचय

बैंक की परिभाषाएँ

बैंक के विकास के प्रारम्भिक काल से लेकर अब तक बैंक के रूप तथा कार्यो में अनेक परिवर्तन हुए हैं। इन विभिन्नताओं के कारण बैंक की अलग–अलग परिभाषाएँ दी गई है:

(1) बैंक की कुछ परिभाषाएँ कानूनी आधार पर दी गयी है। इग्लैंड के विनिमय बिल विधान के अनुसार, ''बैंकर के अंतर्गत बैंकिग का कार्य करने वाले व्यक्तियों का एक समूह चाहे वह समामेलित हो अथवा नहीं सम्मिलित होता है।'' भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम के अनुसार, ''बैंकर के अंतर्गत बैंकिग का काम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति तथा इनका आधार यह है कि जो बैंक का कार्य करे वह बैंकर है। परंतु इन परिभाषाओं से यह अनुमान नहीं लग सकता कि बैंक के कार्य क्या है तथा बैंक का स्वरूप क्या है।

(2) बैंक के कार्यो के आधार पर भी अनेक परिभाषाएँ दी गई है। सन् 1949 के भारतीय बैंकिग कंपनीज एक्ट की धारा 5(b) के अनुसार, ''बैंक अथवा बैंकिग कंपनी वह है कि जो ऋण देने के लिए अथवा निवेश के लिए जनता से मुद्रा की जमाराशियों को स्वीकार करती है, जिन्हें माँगे जाने पर अथवा किसी अन्य प्रकार से लौटाया जा सके तथा चैक, ड्राफ्ट, आदेश अथवा किसी अन्य प्रकार से निकाला जा सकें।'' इस परिभाषा में बैंक के जमा स्वीकार करने तथा उनको लौटाने के कार्यो का उल्लेख है।

2.3 विकास और इतिहास

बैंकों का विकास

रोम सभ्यता के पतन के पश्चात् ईसा मसीह के बाद पाँचवी शताब्दी के यूरोप के अंधेरे युग का आरम्भ होने पर बहुत लंबे काल के लिए बैंकिग व्यवसाय प्रायः समाप्त सा हो गया था, जिसका पुनरूत्थान मध्य काल में हुआ। 12वीं शताब्दी में विशेषकर यहूदियों के प्रयासों से बैंकिग का पुनः आरंभ हुआ। ईसाइयों को अपने धर्म की ओर से ऋण देकर ब्याज लेने की आज्ञा नहीं थी। इसलिए यहूदियों को बैंकिग कार्य में किसी प्रतियोगिता का भय नहीं था। परंतु कुछ समय पश्चात् इटली के लोगों ने बैंकिग का कार्य आरंभ कर दिया तथा लगभग दो शताब्दी के समय में उनकी क्रियाओं का विस्तार सारे यूरोप में हो गया। 1148 में जिनोआ में एक महत्वपूर्ण बैंक स्थापित हुआ और सन् 1157 में बैंक ऑफ वेनिस की स्थापना हुई। 1401 ई. में बैंक ऑफ वार्सीलोना तथा 1407 में बैंक ऑफ जिनोआ स्थापित किए गए।

आधुनिक बैंकिग का वास्तविक विकास सत्रहवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ। सन् 1609 में हॉलैंड में बैंक ऑफ एम्सटर्डम, सन् 1619 में जर्मनी में बैंक ऑफ हेम्बर्ग तथा 1694 में इंग्लैंड की स्थापना हुई। आर्थिक क्षेत्र में धीरे–धीरे बैंकों का महत्व बढने लगा। कालान्तर में

सयुक्त पूँजी वाले बैंकों की स्थापना हुई, जिससे विकास की गति तेज हो गयी और आज बैंकिग व्यवस्था प्रत्येक देश अर्थ व्यवस्था की आधारशिला है।

2.4 बैंकों की सेवायें

आधुनिक बैंकों के कार्य

जिस प्रकार बैंकों का विकास धीरे–धीरे हुआ है, उनके कार्यो का विस्तार धीरे–धीरे ही होता रहा है। प्राचीन काल में बैंकर आरम्भ में केवल मुद्राओं का अदल बदल ही करते थे, बाद में वे लोगों से ब्याज पर ऋण भी स्वीकार करने लगे। उनके पास अधिक धन जमा हो जाने पर उन्होंने इस धन में से ऋण देना भी आरम्भ कर दिया। धीरे–धीरे चैक का प्रयोग आरम्भ हुआ तथा अन्य साख पत्रों का विकास हुआ। सन् 1708 तक नोटों के निर्गमित करने का अधिकार या तो सरकार के हाथों में था या केंद्रीय बैंक के हाथ में। संयुक्त पूँजी वाले बैंकों का उदय होने पर ये संस्थाएँ विविध प्रकार के एजेंसी कार्य भी करने लगी। आधुनिक बैंक अनेक प्रकार के कार्य करते हैं। उनके प्रमुख कार्य निम्नलिखित है–

(1) जमा स्वीकार करनाः–बैंकों द्वारा जनता से धन मुख्यतः दो प्रकार से प्राप्त किया जाता है–अपने शेयर बेचकर तथा जनता से जमा स्वीकार करके। शेयरों की बिक्री से प्राप्त पूँजी बैंक के व्यवसाय के लिए पर्याप्त नहीं होती है, इसलिए बैंकों को जनता से उनकी जमाराशियों के रूप में ऋण लेना पड़ता है। लोग अपनी बचते बैंकों में जमा कर देते हैं जिन पर उन्हें ब्याज मिलती है तथा उनका धन सुरक्षित रहता है। बड़े व्यापारियों को अपना धन बैंक के पास रखने में भुगतानों में बड़ी सुविधा होती है।

बैंक में रकम करने के लिए प्रायः पाँच प्रकार के खातों की व्यवस्था होती है, जिनमें से प्रथम तीन प्रकार के खाते तो सभी बैंकों में होते है, परंतु अंतिम तीन प्रकार के खातों की व्यवस्था केवल कुछ ही बैंकों में होती है। ये विभिन्न खाते निम्नलिखित हैः

(क) निश्चितकालीन जमा खाताः–इस प्रकार के खाते में रकम एक निश्चित अवधि के लिए जमा की जाती है जो प्रायः 3 माह से 5 वर्ष तक के लिए होती है। जमाकर्ता को जमा की रसीद दे दी जाती है, जिसमें जमाकर्ता का नाम, जमा की राशि, ब्याज की दर तथा जमा की अवधि लिखी रहती है। यह रसीद हस्तान्तरणीय नहीं होती और अवधि की समाप्ति पर रकम वसूल करते समय यह रसीद बैंक को लौटा देनी होती है। यदि जमाकर्ता को अपनी रकम की आवश्यकता अवधि पूर्ण होने से पहले पड़ जाती है तो कुछ कटौती काट कर बैंक उसे रकम लौटा देता है। निश्चितकालीन जमा पर बैंक अधिक ब्याज देता है। अवधि जितनी ही लंबी हो ब्याज दर उतनी ही ऊँची होती है क्योंकि बैंक को यह विश्वास रहता है कि वह इस रकम को लंबे समय तक प्रयोग कर सकता है तथा ऋण देकर ब्याज कमा सकता है। इस प्रकार की जमाराशि को बैंक की काल देनदारी कहा जाता है।

(ख) चालू खाताः–इस प्रकार के खाते में जमाकर्ता दिन में जितनी बार चाहे रूपया जमा करा सकता है और निकाल सकता है। जमाराशि प्रायः चैक द्वारा निकाली जाती है। व्यापारियों

तथा बड़ी–बड़ी संस्थाओं के लिए चालू खाते बहुत उपयोगी होते है क्योंकि उन्हें दिन में कई भुगतान प्राप्त होते है और अनेक भुगतान करने होते है। चालू खाता खोलने पर बैंक द्वारा एक पास बुक जिसमें लेन देन का विवरण होता है, एक चैक बुक तथा रकम जमा कराने के फार्म दिए जाते है। साधारणतया चालू खाते में जमाराशि पर बैंक ब्याज नहीं देते बल्कि कुछ बैंक तो जमाकर्ता से कुछ सेवा व्यय भी वसूल करते है। जमाराशि के न्यूनतम रकम के कम होने पर दोनों के अंतर पर जमाकर्ता से ब्याज ले ली जाती है। चालू खाते में जमाराशि को बैंक की माँग देनदारी कहा जाता है। अमेरिका में चालू खाते को चैक खाता कहते हैं।

(ग) बचत खाताः–छोटी बचत वाले लोगों के लिए बचत खाते अधिक उपयुक्त होते हैं। इस प्रकार के खाते में सप्ताह में कई बार रकम जमा की जा सकती है परंतु एक या दो बार से अधिक निकाली नहीं जा सकती। कुछ बैंकों में रकम निकालने की सुविधा या आधार साप्ताहिक न होकर वार्षिक होता है अर्थात् एक वर्ष में 100 बार के लगभग रकम निकाली जा सकती है एक बार मे एक निर्धारित सीमा से अधिक रूपया निकालने के लिए बैंक पहले से सूचना देने की शर्त रख सकता है। इन खातों से रूपया निकालने की दो प्रणालियाँ है। एक तो रूपया निकालने समय पास बुक प्रस्तुत करनी होती है और रूपया निकालने का फार्म भरकर रूपया निकाला जाता है। दूसरा तरीका चैक द्वारा रूपया निकालने का है। एक निश्चित रकम से कम जमाराशि न होने पर बैंक चैकों द्वारा निकालने की सुविधा देते है।

(घ) आवर्ती जमा खाताः–एक निर्धारित अवधि के लिए जमाकर्ता मासिक आधार पर रकम जमा करता है जिसे बैंक द्वारा अवधि पूर्ण होने पर लौटाया जाता है। कुछ बैंक दैनिक आधार पर भी जमा स्वीकार करते है। आवर्ती खातों में प्रायः छोटी बचत वाले लोग ही रकम जमा करते हैं। इन पर बैंक ब्याज देता है जोकि मूल धन के साथ जुड़ती रहती है। सामान्यतया अवधि पूर्ण होने से पहले रकम नहीं निकाली जा सकती है। यदि इसके लिए बैंक अनुमति देता है तो ब्याज में कटौती की जाती है।

(ङ) गृह बचत खाताः–कुछ बैंकों द्वारा छोटी बचतों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से ग्राहकों को घर ले जाने के लिए गुल्लक दी जाती है जिसमें वे समय–समय पर अपनी बचत डालते रहते है। गुल्लक की चाबी बैंक के पास रहती है। कुछ समय बाद गुल्लक बैंक में लाने पर उससे रकम निकाल ली जाती है और जमाकर्ता के खाते में जमा हो जाती है। इस प्रकार की जमा पर ब्याज की दर प्रायः कम होती है।

(च) अनिश्चितकालीन जमा खाताः–इस खाते के अंतर्गत अनिश्चित काल के लिए रकम जमा करायी जाती है जिसे कुछ विशेष दशाओं मे ही निकाला जा सकता है। जमाकर्ता केवल ब्याज की रकम निकाल सकता है। इस खाते में जमा रकम पर ब्याज दर काफ़ी ऊँची होती है परंतु ऐसे खाते हमारे देश में विशेष प्रचलित नहीं है।

इस प्रकार बैंक अपना व्यवसाय चलाने के लिए अंश पूँजी के अतिरिक्त जनता से उपर्युक्त खातों के अंतर्गत जमा प्राप्त करता है। इस पर भी यदि बैंक पर्याप्त साधन जुटा पाता हो वह अन्य बैंकों से अथवा केंद्रीय बैंक से ऋण लेता है। केंद्रीय बैंक अन्य सभी बैंकों की स्थिति का ध्यान रखता है।

(2) ऋण देना:—आधुनिक बैंकों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य ऋण देना है। जमाकर्ताओं की रकम बैंक के पास जमा रखी नहीं रहती। कुछ नकद कोष रखने के पश्चात् बैंक बाकी रकम ज़रूरतमंद व्यवसायियों को ऋण के रूप में दे देता है। बैंक जमा पर दी जाने वाली ब्याज की अपेक्षा ऋणों पर अधिक ब्याज लेता है और इन दोनों की दरों के अंतर से बैंक को लाभ होता है। बैंकों को ऋण देने का कार्य काफ़ी सतर्कता से करना होता है क्योंकि असावधानी का परिणाम बैंक के लिए हानिकारक हो सकता है। आधुनिक बैंक प्रायः उत्पादन कार्यों के लिए ही ऋण देते हैं तथा उचित जमानत या धरोहर की माँग करते हैं। अधिकांश बैंक ऐसी धरोहर पर ऋण देते हैं जिसे आसानी से बाजार में बेचा जा सके। ऋण की रकम प्रायः धरोहर मूल्य से कम होती है, क्योंकि मूल्य में परिवर्तन की संभावना के कारण कुछ अंतर रखना आवश्यक होता है। कभी—कभी बैंक द्वारा व्यक्तिगत जमानत पर दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सम्मिलित जमानत पर या चल एवं अचल संपत्ति की गिरवीं पर भी ऋण दिया जाता है। बैंक सामान्यतः निम्नलिखित चार प्रकार के ऋण प्रदान करते हैं:

(क) ऋण तथा अग्रिम धन:—एक निश्चित रकम के निश्चित समय के लिए दिए गए ऋण जिनका भुगतान पूर्णतया हो जाने पर ही ऋण का अंत होता है, ऋण अथवा अग्रिम धन कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, ऋणी बैंक से जो संपूर्ण राशि ऋण के रूप में प्राप्त करता है उनका कुछ अंश लौटा देने पर ऋणी पुनः उसी ऋण के अंतर्गत उसे प्राप्त करने का अधिकारी नहीं होता। बैंक उसे अलग से दूसरा ऋण दे सकता है। इस प्रकार ऋण कभी चालू नहीं रहता। यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जब कभी इस प्रकार का ऋण दिया जाता है तो ऋण लेने वाले के नाम एक खाता खोलकर ऋण की राशि उसमें लिख दी जाती है। ऋण लेने वाला आवश्यकतानुसार चैक द्वारा समय—समय पर रकम निकालता रहता है। ऋण की पूरी रकम पर तत्काल ब्याज लगना आरम्भ हो जाता है, चाहे उस रकम का केवल एक भाग ही निकाला जाय। ऋण प्रायः यथेष्ट जमानत पर आधारित होता है तथा इसकी अवधि निश्चित होती है। ब्याज की दर का ग्राहक की साख, ऋण के उद्देश्य, अवधि तथा धरोहर की किस्म आदि पर निर्भर करता है।

(ख) नकद साख:—इस व्यवस्था के अंतर्गत बैंक एक निश्चित सीमा तक ऋण प्राप्त करने का अधिकार दे देता है। इस सीमा के अंदर ऋणी अपनी आवश्यकतानुसार बैंक से रकम लेता रहता है और जमा भी करता रहता है। ब्याज उसी रकम पर वसूल किया जाता है, जो वास्तव में ऋणी के पास रहती है परंतु कभी—कभी बैंक नकद साख की कुल रकम पर ही ऋणी से ब्याज लेता है। ऋण के लिए व्यापारिक माल, बॉण्ड अथवा स्वीकृति प्रतिभूतियों की जमानत ली जाती है। यह प्रणाली स्कॉटलैंड में आरंभ हुई थी और आज सभी देशों में प्रचलित है।

(ग) अधिकवर्ष:—बैंक में चालू खाता अथवा बचत खाता रखने वाले ग्राहक बैंक से एक समझौते के अंतर्गत अपनी जमा की राशि से अधिक रकम निकालने की अनुमति ले लेते हैं। निकाली गई अतिरिक्त रकम को ही अधिकवर्ष कहा जाता है। इस प्रकार की सुविधा बैंक द्वारा अल्प समय के लिए ही दी जाती है। यह उचित जमानत देने पर केवल विश्वसनीय

ग्राहकों को ही मिलती है। अधिकवर्ष पर ब्याज भी अधिक ली जाती है। यह सुविधा उन्हीं खातों पर दी जाती है जिनमें चैक के द्वारा रकम निकाली जा सकती है।

(घ) विनिमय बिलों का भुनाना:—मुद्दती बिलों की मुद्दत अथवा अवधि पूर्ण होने के पूर्व यदि बिल का भुगतान प्राप्त करने वाला भुगतान चाहता है तो वह बैंक से बिल भुना लेता है। भुगतान के बाकी समय की ब्याज की कटौती करके बैंक तत्काल भुगतान कर देता है। इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाता है कि इस प्रकार के बिल व्यापारिक बिल ही हों। बिल की कटौती अथवा बट्टा तीन बातों पर निर्भर करता है—बिल की अवधि, बिल की रकम तथा बिल की जोखिम। बिलों के आधार पर दिए गए ऋण बैंक के लिए लाभदायक होते हैं क्योंकि 1. बिल का भुगतान के लिए ज़िम्मेदारी बिल के दोनों पक्षों, अर्थात् बिल के लिखने वाले तथा स्वीकार करने वाले की होती है, इसलिए बैंक को दोहरा संरक्षण रहता है, 2. आवश्यकता पड़ने पर बैंक इन बिलों को केंद्रीय बैंक से पुनः भुना सकता है, 3. यह ऋण अल्पकालीन होता है, 4. बिलों को मूल्य स्थिर रहता है क्योंकि इनकी रकम निश्चित होती है। इनसे देश के व्यापार को भी लाभ पहुँचता है।

(3) अभिकर्ता संबंधी कार्य:—बैंक अपने ग्राहकों के लिए एजेण्ट अथवा प्रतिनिधि के रूप में भी कार्य करते है। ऐसे कार्यो के लिए ग्राहक स्वयं अपने बैंक को लिखित अनुमति देते है। इनमें से कुछ कार्य निशुल्क किए जाते है तथा कुछ के लिए निश्चित शुल्क प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है:

- ग्राहकों द्वारा भेजे गए चैक, विनिमय बिल आदि साख पत्रों का भुगतान एकत्र करने का कार्य बैंक करते हैं।
- बैंक अपने ग्राहकों द्वारा लिखे गए चैकों का भुगतान करते हैं तथा कभी—कभी ग्राहकों के बिल भी स्वीकार करते हैं, जिनका भुगतान निश्चित तिथि पर कर दिया जाता है।
- ग्राहकों के आदेशानुसार बैंक अपने बीमे के प्रीमियम, कर, ब्याज चंदे, ऋण की किस्त आदि के भुगतान करने का कार्य करते हैं।
- अपने ग्राहकों की ओर से बैंक लाभांशों, ब्याज, किराया, ऋण की किस्त आदि वसूल भी करते हैं।
- बैंक अपने ग्राहकों के लिए सरकारी प्रतिभूतियाँ, कंपनियों के शेयर्स तथा ऋणपत्रों आदि के क्रय विक्रय का कार्य भी करते हैं।
- बैंकों द्वारा अपने ग्राहकों की सुविधा के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान को रकम भेजने की व्यवस्था की जाती हैं।
- बैंक अपने ग्राहकों की संपति के प्रबंधक, ट्रस्टी अथवा व्यवस्थापक का कार्य भी करते हैं।
- ग्राहकों के लिए बैंक पासपोर्ट तथा यात्रा संबंधी विदेशी विनिमय एवं अन्य सुविधाओं के लिए भी पत्र व्यवहार करते हैं।

(4) विदेशी विनिमय का क्रय विक्रयः—अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास के लिए बैंक विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय करते हैं। यद्यपि यह कार्य मुख्य रूप से विदेशी विनिमय बिलों का है, परंतु साधारण वाणिज्यिक बैंक भी यह कार्य करते है। जिन देशों में विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय नियंत्रित होता है, यह कार्य केंद्रीय बैंक अथवा उससे अनुमति प्राप्त किसी अन्य बैंक द्वारा ही किया जाता है।

(5) विविध उपयोगी सेवाएंः—ऊपर बताए गए अनेक कार्यों के अतिरिक्त आधुनिक बैंक निम्नलिखित कुछ सामान्य उपयोगी कार्य भी करते है जैसे—

- बैंक अपने ग्राहकों की बहुमूल्य वस्तुओं जैसे जेवर, कानूनी पत्र, दस्तावेज़ आदि को सुरक्षित रखने के लिए विशेष प्रकार की छोटी तिजोरियाँ अपने पास रखते हैं।
- बैंक अपने ग्राहकों के लिए यात्री चैक तथा साख प्रमाण पत्र देते है जिससे उन्हें यात्रा करते समय नकद मुद्रा साथ नहीं ले जाती पड़ती।
- बैंकों द्वारा क्रेडिट कार्ड तथा डेबिट कार्ड जारी किए जाते है, जिनके माध्यम से इनके धारक अनेक प्रकार के भुगतान कर सकते है। इन्हें प्लास्टिक मनी की संज्ञा दी जाती है। क्रेडिट कार्ड का धारक इसका प्रयोग करने पर बैंक का ऋणी हो जाता है। एक निर्धारित अवधि के पश्चात् रकम वसूल न होने पर बैंक ब्याज लेता है। डेबिट कार्ड का प्रयोग करने पर धारक के बैंक खाते में जमा राशि से स्वतः की विक्रेता को भुगतान प्राप्त हो जाता है। बैंकों का कंप्यूटरीकरण होने के पश्चात् ए.टी. एम जारी किए गए है जिनका प्रयोग करके बैंक बिना काउन्टर पर गए नकदी प्राप्त कर सकते है। कुछ बैंकों के ए.टी.एम का प्रयोग डेबिट कार्ड के रूप में भी किया जा सकता है।
- बैंक अपने ग्राहकों की आर्थिक स्थिति की सूचना अन्य व्यापारियों को देते है और पूछे जाने पर अन्य व्यापारियों की आर्थिक स्थिति की जांच पड़ताल करके अपने ग्राहकों को सूचित करते हैं।
- कुछ बड़े बैंक देश के व्यापार तथा उद्योग से संबंधित आँकड़े एकत्र करते हैं तथा सूचनाएँ प्रकाशित करते हैं।
- बैंक कंपनियों के शेयर्स तथा ऋणपत्रों के अभिगोपन का कार्य करते हैं, जिससे कंपनियों को पूँजी प्राप्त करने में सुविधा होती है। यह शेयर्स जनता द्वारा न खरीदे जाने पर बचे हुए शेयर्स बैंक स्वयं खरीद लेता है।
- सरकार द्वारा जारी किए गए ऋणों की बिक्री की व्यवस्था बैंकों द्वारा की जाती है।
- बाढ़ पीडितों का कोष, सुरक्षा कोष आदि राष्ट्रीय चंदे संग्रह करने का कार्य भी बैंकों द्वारा किया जाता है।
- देश के प्रमुख बैंक स्टॉक एक्सचेंज में समाशोधन गृह का कार्य भी करते हैं तथा सौदों के भुगतान में सहायक होते हैं।

- बैंक अपने ग्राहकों की उपभोग की महंगी वस्तुओं, जैसे मोटर, स्कूटर, रेफ्रिजरेटर आदि की उपलब्धि ऋण पर करा देते हैं।
- बैंक एक विशेषज्ञ के समान अपने ग्राहकों को उनके धन तथा निवेश संबंधी मामलों में सलाह देते हैं।

(6) इलेक्ट्रॉनिक आधारित बैंकिग कारोबारः—देश के भीतर और विभिन्न देशों में आर्थिक एकीकरण, विनियमन, दूरसंचार की उन्नति और इन्टरनेट एवं बेतार सूचना, प्रौद्योगिकी की वृद्धि से वितीय सेवाओं के स्वरूप और प्रकृति में नाटकीय परिवर्तन हो रहा है। इलेक्ट्रॉनिक संचार के उपयोग में वृद्धि तथा कागज आधारित लिखितों के अतिरिक्त अन्य तरीकों के आधार पर निधि अंतरण के आविर्भाव के कारण इलेक्ट्रॉनिक आधारित बैंकिग कारोबार में वृद्धि हुई है। कागज रहित प्रणाली के संबंध में ई—मनी को अपनाया जा सकता है। पूर्ण इलेक्ट्रॉनिक कारोबारी सिस्टम से मुक्त इन्टरनेट बैंकिग शुरू करने के लिए कंप्यूटरीकरण, नेटवर्किंग और सुरक्षा अंतर बैंक भुगतान गेटवे और विविध ढाँचे से मुक्त प्रौद्योगिकी की दृष्टि से बुनियादी आवश्यकताएँ शामिल रहती हैं।

(7) साख निर्माण का कार्यः—अधिक लाभ कमाने के लिए आधुनिक बैंक अपनी अंश पूँजी तथा जमा राशि की कुल मात्रा से अधिक ऋण देते हैं जो उनके द्वारा साख का निर्माण करने पर संभव होता है। वास्तव में, आधुनिक बैंक व्यवस्था का विकास बहुत कुछ बैंकों की साख निर्माण की शक्ति द्वारा ही संभव हुआ है। बैंकों के साख निर्माण कार्य का विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में अलग से किया गया है।

बैकों का महत्व

वर्तमान समय में प्रत्येक देश का उत्पादन, उद्योग, व्यापार तथा व्यवसाय बैंकिग व्यवस्था पर आश्रित होते है। आर्थिक एवं औद्योगिक विकास की योजनाओं की सफलता के लिए प्रत्येक देश की बैंकिग के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान देता है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में बैंकों को वाणिज्य तथा व्यापार का तंत्रिका केंद्र कहना अनुचित न होगा। विकसेल ने बैंकों को आधुनिक चलन व्यवस्था का हृदय तथा केंद्र बिंदु कहा है। आर्थिक विकास के साथ—साथ बैंकों के कार्य तथा महत्व में भी वृद्धि होती है और एक विकसित अर्थ व्यवस्था में तो बैंकों के अभाव की कल्पना भी नहीं की जा सकती। बैंकों से प्राप्त होने वाले विभिन्न लाभ निम्नलिखित हैः

(1) बचत का संग्रह करके उत्पादन कार्यों में लगानाः—लोगों के पास अतिरिक्त धन की मात्रा को बैंक जमा के रूप में प्राप्त करते हैं। चूँकि बैंक जमा धनराशि सुरक्षित रहती है तथा उस पर ब्याज मिलता है, इसलिए बचत की भावना को प्रोत्साहन मिलता है। इसी प्रकार एकत्रित धन को बैंक उन लोगों को ऋण के रूप में दे देते है जिन्हें उत्पादन में वृद्धि के लिए इसकी आवश्यकता होती है। उत्पादकों की आर्थिक सहायता करके बैंक देश में पूँजी के निर्माण में सहायक होते है। इससे न केवल कुछ व्यक्तियों का बल्कि सारे समाज का हित होता है।

(2) मुद्रा प्रणाली में लोचः—व्यापार तथा उद्योग की मौद्रिक आवश्यकता में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार बैंक देश में साख मुद्रा का समय—समय पर आवश्यकतानुसार प्रसार एवं संकुचन करते रहते हैं, जिससे मुद्रा प्रणाली लोचपूर्ण बन जाती है।

(3) मुद्रा के प्रेषण में सहायकः—बैकों की सहायता से मुद्रा को एक स्थान से दूसरे स्थान पर बहुत थोड़े से खर्चे से सुरक्षित पहुँचाया जा सकता है।

(4) भुगतान में सुविधाः—चैकों द्वारा भुगतान करने से एक तो लोगों को सिक्के तथा नोट गिनने तथा परखने की असुविधा नहीं होती, दूसरे भुगतान करने वाले व्यक्ति को भुगतान का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यात्रियों के चैक, साख प्रमाण पत्र तथा विदेशी विनिमय की व्यवस्था द्वारा बैंक विदेशी भुगतानों को भी सुविधाजनक बना देते हैं।

(5) बैंकिग की आदत को प्रोत्साहनः—बैंकों के संपर्क में आने से लोगों में बैंकिग की आदत उत्पन्न होती है। विधिग्राह्म मुद्रा के स्थान पर लोग चैकों द्वारा अधिक भुगतान करने लगते हैं, जिसके फलस्वरूप बहुमूल्य धातुओं के प्रयोग में बचत होती है। आधुनिक काल में साख का प्रसार मुख्य रूप से बैंकों की ही देन है, जिससे साख का प्रयोग के अनेक लाभ प्राप्त होते हैं।

(6) धन की सुविधाः—बैंकों में अपना धन जमा करके तथा बैंकों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को धन भेजने मे तो धन की सुरक्षा प्राप्त होती है, इसके अतिरिक्त बैंक अपने ग्राहकों की बहुमूल्य वस्तुएँ, आभूषण तथा महत्वपूर्ण पत्र आदि सुरक्षित रखने के लिए अपने पास मज़बूत लॉकरों की व्यवस्था करते हैं।

(7) ग्राहकों की विविध सेवाएंः—बैंक अपने ग्राहकों के लिए अनेक प्रकार के एजेन्सी कार्य भी करते हैं, जैसे ग्राहकों की ओर से भुगतान प्राप्त करना अथवा भुगतान देना, शेयर्स आदि खरीदना और बेचना, ट्रस्टी या प्रबंधक का कार्य करना इत्यादि।

(8) व्यापार तथा उद्योग के लिए सहायकः—व्यापार तथा उद्योगों के लिए बैंक से ऋण प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त बैंक कंपनियों के शेयर्स तथा ऋणपत्रों का अधिगोपन करते है। व्यापारियों को एक दूसरे की आर्थिक स्थिति की जानकारी देते हैं तथा उनके ऋणों की गारण्टी देते है। आंकड़े व सूचनाएं प्रकाशित करके देश की आर्थिक स्थिति की जानकारी भी देते हैं।

(9) सरकार को सहायताः—बैंक केवल जनता को ही नहीं, सरकार को भी विभिन्न प्रकार से सहायता देते है। ये सरकारी ऋण के विक्रय में बहुत सहायक होते हैं। कभी—कभी ये सरकार की ओर से कर की वसूली एवं सरकारी भुगतानों का भी कार्य करते है। सार्वजनिक चंदा आदि इकट्ठा करके ये संकट काल में सरकार की सहायता भी करते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बैंक आधुनिक अर्थ व्यवस्था में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

आधुनिक बैंकों के प्रकार

वैसे तो बैंक के अनेक कार्य होते है, परंतु प्रत्येक बैंक कहलाने वाली संस्था के कुछ प्रमुख कार्य तथा उद्देश्य होते है और इन्हीं के लिए उसकी स्थापना की जाती है। अलग–अलग प्रकार के बैंकों की जमाराशियों के स्वरूप तथा इनके द्वारा दिए जाने वाले ऋणों के उद्देश्य भी अलग–अलग होते हैं। इनके प्रमुख कार्यों तथा उद्देश्यों के आधार पर विभिन्न रूप निम्नलिखित हैः

(1) वाणिज्यिक बैंकः–वाणिज्यिक बैंक जिन्हें व्यावसायिक बैंक भी कहते हैं, सामान्य बैंकिग के कार्य करते हैं तथा व्यापारिक उद्देश्यों के लिए अल्पकालीन ऋणों की व्यवस्था करते है। चूँकि इन बैंकों की अधिकतर अल्पकालीन जमाराशियाँ ही होती हैं, इसलिए साधारणतः ये एक वर्ष से अधिक समय के लिए ऋण नहीं दे पाते हैं। भारत में निजी क्षेत्र में मिश्रित पूँजी बैंक तथा सार्वजनिक क्षेत्र में स्टेट बैंक, इसके सहायक बैंक तथा उन्नीस राष्ट्रीयकृत बैंक वाणिज्यिक बैंक ही है। व्यापार संबंधी ऋण प्रदान करने के अतिरिक्त यें बैंक जमा प्राप्त करने, चैकों का संग्रह व भुगतान करने तथा एजेन्सी संबंधी अनेक कार्य करते है जिनका उल्लेख हम पीछे कर चुके है।

प्रो. चैण्डलर के अनुसार इन बैंकों का वाणिज्यिक बैंक कहना अनुचित तथा भ्रमात्मक है और इनकों किसी अन्य नाम से पुकारा जाना चाहिए। वाणिज्यिक बैंक कहलाने वाली संस्थाओं के कार्यों का अब अधिक विस्तार हुआ हैं, क्योंकि इनके द्वारा अब केवल वाणिज्य तथा व्यापार संबंधी ऋण ही नहीं बल्कि औद्योगिक तथा अन्य कई प्रकार के ऋण भी दिए जाते है। इसके अतिरिक्त वे चैकों के भुगतान, बचत को प्रोत्साहन तथा अनेक प्रकार के एजेन्सी कार्यो के द्वारा अपने ग्राहकों की सेवा करते है।

(2) औद्योगिक बैंकः–उद्योगों के लिए मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था करने वाली संस्थाएँ औद्योगिक बैंक कहलाती है। अपने पास से ऋण देने के अतिरिक्त यें औद्योगिक फर्मों का उनके शेयर्स, ऋणपत्र तथा बॉण्ड आदि बिकवा कर अथवा अभिगोपन द्वार पूँजी प्राप्त करने में भी सहायक होते हैं। सामान्यतः औद्योगिक बैंकों के तीन प्रकार से कार्य होते है–प्रथम, दीर्घकालीन जमा प्राप्त करना, द्वितीय औद्योगिक कंपनियों की ऋण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करना, तथा तृतीया कुछ अन्य कार्य करना, जैसे–औद्योगिक कंपनियों के अंशों व ऋणपत्रों के क्रय विक्रय में सहायक होना तथा उनकी निवेश संबंधी समस्याओं पर उन्हें परामर्श देना आदि।

(3) विदेशी विनिमय बैंकः–विदेशी मुद्रा में लेन–देन तथा विदेशी व्यापार के लिए वित्तीय व्यवस्था करने वाली संस्थाओं को विनिमय बैंक कहा जाता है। इस प्रकार के बैंकों को अपनी शाखाएँ अनेक देशों में स्थापित करनी पड़ती है। इन्हें काफ़ी अधिक पूँजी तथा अपेक्षाकृत अधिक कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। आजकल विनिमय बैंक साधारण वाणिज्यिक बैंकों के समान बैंकों के अन्य कार्य भी करते है। इसके विपरीत वाणिज्यिक बैंक भी विनिमय बैंकों का कार्य करते हैं इसलिए इसका कोई अलग वर्ग नहीं है। प्रायः ऐसे बैंकों को ही जो अन्य बैंकिग कार्यों के साथ–साथ विदेशी विनिमय का लेन–देन करते है, विनिमय

बैंक कहा जाता है। भारत में विदेशी बैंकों की शाखाएं मुख्य रूप से विदेशी विनिमय का व्यवसाय करती है। भारतीय वाणिज्यिक बैंक भी विदेशी विनिमय का व्यवसाय करते हैं।

(4) कृषि कार्यः—कृषि की वित्त संबंधी आवश्यकताएं व्यापारिक तथा औद्योगिक आवश्यकताओं से भिन्न प्रकार की होती है। कृषक को बीज, खाद्य, औजार आदि खरीदने के लिए अल्पकालीन ऋण तथा भूमि के स्थायी सुधार के लिए दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकता होती है। परंतु कृषक ऋण प्राप्ति के लिए उस प्रकार की जमानत नहीं दे पाते जिस प्रकार वाणिज्यिक तथा औद्योगिक बैंक चाहते है! अतएव उनके लिए अलग प्रकार के बैंकों की व्यवस्था करनी पडती है। जापान, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों में अनेक नामों से कृषि बैंकों की स्थापना की गई है। भारत सरकार तथा केंद्रीय बैंक इसके लिए प्रयत्नशील रहे हैं कि देश में वाणिज्यिक बैंक कृषि वित्त की व्यवस्था करें। कृषि बैंक मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं—सहकारी बैंक तथा भूमि बंधक बैंक।

कृषि बैंकिग के क्षेत्र में भारत में वाणिज्यिक बैंक भी कार्य कर रहे है। 1975 से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित किए गए है। एक सर्वोच संस्था के रूप में जुलाई 1982 में राष्ट्रीय कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना की गयी है।

सहकारी बैंक—इनका प्रारंभ सर्वप्रथम जर्मनी में हुआ था। भारत में इनका प्रारंभ सन 1904 के सहकारी साख समिति एक्ट से हुआ और समय समय पर इसके संगठन में परिवर्तन होता रहा है। शहरों में सहकारी बैंक अन्य वाणिज्यिक बैंकों की भांति ही कार्य करते हैं, परंतु इनका पंजीकरण संबंधित राज्य सरकार के सहकारी समिति अधिनियम के अंतर्गत किया जाता है। इन पर रिजर्व बैंक को भी विनियामक और पर्यवेक्षी प्राधिकार प्राप्त हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थाएँ स्थापित की जाती है। अल्पावधि ऋणों के लिए प्राथमिक कृषि ऋण समितियाँ गठित की जाती है। कृषक प्रारंभिक समितियों के सदस्य होते है, जो सदस्यों को शेयर बेचकर तथा जमा स्वीकार करके पूँजी इकट्ठी करती है। इनकी देखभाल तथा सहायता के लिए मध्यवर्ती तथा राज्य सहकारी बैंकों का संगठन किया जाता है जो प्रारम्भिक समितियों को ऋण प्रदान करते हैं। बैंकिग विनियमन अधिनियम, 1949 के अंतर्गत केवल शहरी सहकारी बैंक, राज्य सहकारी बैंक और जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंक सहकारी क्षेत्र के बैंक कहलाने के पात्र है।

सहकारी बैंक अपने व्यापक शाखा नेटवर्क और स्थानीयकृत परिचालानात्मक आधार के साथ सामान्यतः विकास प्रक्रिया में और विशेषतः ऋण वितरण तथा जमा संग्रहण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

भूमि विकास बैंक—ये ऐसी सहकारी, अर्द्ध सहकारी अथवा गैर सहकारी संस्थाएँ हैं जो भूमि को बंधक रखकर भूमि के स्थायी सुधार के लिए दीर्घकालीन ऋण प्रदान करती है। इसलिए इन्हें भूमि बंधक बैंक कहा जाता था। इनकी स्थापना सर्वप्रथम 1882 में फ्रान्स में हुई। कालान्तर में इन्हें दूसरे देशों में भी स्थापित किया गया। अधिकांश देशों में ये बैंक मिश्रित पूँजी वाले बैंक होते हैं। ये अपनी अधिकांश कार्यशील पूँजी अंशों, ऋणपत्रों तथा दीर्घकालीन जमाराशियों एवं ऋणों द्वारा प्राप्त करते है। कुछ वर्ष पूर्व भारत मे इन्हें भूमि विकास बैंक

कहा जाने लगा था। अब इन्हें सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक कहा जाने लगा है। इनका संगठन प्राथमिक स्तर तथा राज्य स्तर पर किया जाता है।

(5) देशी बैंकर्सः—आधुनिक बैंकों के विविध रूपों के अतिरिक्त भारत में देशी बैंकर्स का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इनकों महाजन, साहूकार, सर्राफ आदि नामों से भी पुकारा जाता है। भारतीय केंद्रीय बैंकिग जाँच समिति के अनुसार, ''देशी बैंकर अथवा बैंक वह व्यक्ति अथवा व्यक्तिगत फर्म है जो जमा स्वीकार करने, हुण्डियों में व्यवसाय करने अथवा ऋण देने का कार्य करती है।'' ये देश के हर भाग में पाए जाते हैं तथा कृषि एवं व्यापार की अधिकतर वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। ये अन्य बैंकों से भिन्न होते हैं, क्योंकि इनकी जमाराशियाँ नहीं होती हैं अथवा बहुत ही कम होती है। ये अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋणों तथा ऋण के उद्देश्यों में भेद नहीं करते, बैंकिग के साथ अन्य व्यापार तथा व्यवसाय भी करते है तथा बहुत ऊँची ब्याज दर रखते है। भारतीय बैंकिग कंपनी अधिनियम के अनुसार इनकों बैंक अथवा बैंकर नहीं माना गया है और न ही इन पर अधिनियम की व्यवस्थाएँ लागू होती है, परंतु वर्तमान भारतीय व्यवस्था में इनके महत्व को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

(6) बचत बैंकः—पाश्चात्य देशों मे कम अथवा निश्चित आय वाले लोगों द्वारा बचत को प्रोत्साहन देने के लिए बचत बैंक स्थापित किए जाते है, जो प्रायः वाणिज्यिक बैंकों के सहायक बैंक के रूप में कार्य करते है। भारत में वाणिज्यिक बैंक ही बचत खातों का संचालन करते है और अलग से बचत बैंक स्थापित नहीं किए जाते है।

इंग्लैंड तथा भारत मे डाकखाने भी लोगों की बचत जमा के रूप में स्वीकार करते है तथा उस पर ब्याज देते हैं। जमाकर्ता सप्ताह में एक या दो बार रूपया निकलवा सकता है। इस प्रकार डाकखाने बचत बैंक का कार्य करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों मे जहाँ बैंक नहीं है, पोस्ट ऑफिस सेंविग्स काफ़ी महत्वपूर्ण है।

(7) केंद्रीय बैंकः—प्रत्येक देश में एक केंद्रीय बैंक होता है जो देश की मुद्रा का निर्गमन करने के साथ—साथ मुद्रा तथा साख की मात्रा पर नियन्त्रण रखता है। यह सरकार का बैंकर होता है और सरकार के सभी खातों का हिसाब किताब रखता है तथा सरकार को ऋण देता है। यह बैंकों का भी बैंक होता है, क्योंकि आवश्यकता पडने पर वे इससे ऋण लेते हैं तथा अपनी जमाओं का एक निश्चित अनुपात इसके पास जमा करते हैं। अन्य बैंक केंद्रीय बैंक के आदेशों का पालन करते हैं और यह देश की समूची बैंकिग प्रणाली पर अपना नियंत्रण रखता हैं। केंद्रीय बैंक सरकार को आर्थिक तथा मौद्रिक विषयों पर परामर्श देता है तथा देश की आर्थिक स्थिति से संबंधित आंकड़ों का इकट्ठा करता है और प्रकाशित करता है।

2.5 बैंकिंग में प्रौद्योगिकी

वर्तमान वैश्विक आर्थिक परिदृश्य में बैंक के ग्राहक तुरंत सेवा की आशा रखते हैं । इन इच्छाओं की पूर्ती हेतु बैंकों को कंप्यूटरीकृत करके ऑनलाइन कर दिया है तथा नेटवर्क के माध्यम से विभिन्न सेवा प्रदान कर रहे हैं। चाहे बीमा पालिसी जमा करना हो या फिर एक जगह से दुसरे जगह पैसा भेजना हो, बैंक ग्राहकों को ये सुविधाएँ समुचित रूप से उपलब्ध करा रहे हैं।

अब इलेक्ट्रॉनिक फण्ड हस्तांतरण की सुविधा द्वारा निर्यातकों को लाइसेंस शुल्क जमा करने में सहूलियत मिल रही है।

बीमा के क्षेत्र में सब कुछ ऑनलाइन उपलब्ध है। ऑनलाइन होने से इनकी दरें न्यून होती हैं क्योंकि एजेंट न होने तथा कागजी प्रक्रिया के कारण प्रशासनिक लागत में कमी आ जाती है । जिसका लाभ उपभोक्ताओं को मिलता है।

बैंक अपनी वेबसाइट के माध्यम से ग्राहकों को विभिन्न योजनाओं इत्यादि के माध्यम से जानकारी उपलब्ध कराते हैं। ई-बैंकिंग के माध्यम से बैंक ग्राहकों को खता संचालन, बिलों का भुगतान, प्रतिभूति का क्रय इत्यादि सुविधाएँ उपलब्ध कराते हैं। ई-बैंकिंग सभी प्रकार की भौगोलिक दूरी को समाप्त करता है।

ई- बैंकिंग के सुरक्षा संबंधित खतरे हैं। ट्रोजनहोर्स नमक प्रोग्राम के माध्यम से हैकर्स आसानी से एकाउंट के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेते हैं तथा उसका गलत उपयोग करते हैं। इसके लिए ग्राहकों को ई-बैंकिंग का उपयोग सावधानी से करना चाहिए।

ई-बैंकिंग के माध्यम से ग्राहक नई आई डी तथा पासवर्ड के माध्यम से तृतीय पार्टी हस्तांतरण द्वारा भारत के किसी भी बैंक में फण्ड का हस्तांतरण कर सकते हैं। एटीएम (आटोमेटेड टेलर मशीन) के द्वारा ग्राहक को विभिन्न प्रकार की जानकारी उपलब्ध कराते हैं तथा राशि निकालने की सुविधा उपलब्ध कराते हैं। डेबिट तथा क्रेडिट कार्ड की सुविधा द्वारा बैंक ग्राहकों को मनचाही खरीद करने में मदद करते हैं, ई-बैंकिंग द्वारा ग्राहक अपने कार्ड के प्रयोग से कभी भी किसी भी बैंक के एटीएम के द्वारा पैसा निकाल सकते हैं।

ई-बैंकिंग के लाभ एवं सीमाएं

ई-बैंकिंग के लाभ

ई-बैंकिंग के विभिन्न लाभ हैं:

1. बैंक ग्राहक के बीच संवाद का सबसे सस्ता और तेज माध्यम।
2. ग्राहक को उसकी सुविधा के अनुसार सेवा उपलब्ध होती है।
3. नये ग्राहक आसानी से जुड़ जाते हैं।
4. देश-विदेश में सस्ते में सेवा उपलब्ध करना।

5. विभिन्न प्रकार की सेवाएँ यथा बिल जमा करना, बीमा की किश्त जमा करना घर बैठे उपलब्ध रहती है।

ई-बैंकिंग की सीमाएं:

ई-बैंकिंग की निम्नलिखित सीमाएं हैं:

1. ग्रामीण क्षेत्रों में कई शाखाओं के कंप्यूटरीकृत न होने के कारण अभी भी ई-बैंकिंग की सुविधा उपलब्ध नहीं है।
2. ई-बैंकिंग के लिए इंटरनेट की उपलब्धता एवं बिजली का होना आवश्यक है। कई जगह इसकी व्यवस्था न होने के कारण ई-बैंकिंग की सुविधा दक्षता से नहीं उपलब्ध करा पते हैं।
3. ई- बैंकिंग सेवा का गलत उपयोग पासवर्ड चोरी करके राशि निकालने में भी करने की शिकायतें आती है।
4. ई-बैंकिंग के बारे में जागरूकता न होने से ग्राहक को परेशानी होती है।

2.7 बोध प्रश्न

1. बैंकिंग क्या है? बैंक के महत्वों की विवेचना कीजिए।
2. आधुनिक बैंकों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. बैंकिंग के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए। बैंकों द्वारा उपलब्ध सेवाओं का उल्लेख कीजिए।
4. ई-बैंकिंग क्या है? ई-बैंकिंग के लाभों का उल्लेख कीजिए।
5. ई-बैंकिंग की क्या सीमाएं हैं?

2.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

- Gomez, Clifford (2010), Financial Markets, Institutions and Financial Services, PHI Learning, New Delhi.
- Gordon, Natarajan (2010), Financial Markets and Services, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Kohn Meir (1999), Financial Institutions and Markets, Tata McGraw Hill, New Delhi.

इकाई - 3 बैंकिंग वित्तीय संस्थायें - II

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 बैंकिंग का सिस्टम
3.3 केंद्रीय बैंकिंग (आरबीआई)
3.4 भारत में वाणिज्यिक बैंकिंग
3.5 भारत में बैंकिंग कानून
3.6 सारांश
3.7 बोध प्रश्न
3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- बैंकिंग के सिस्टम को समझ सकेंगे।
- केन्द्रीय बैंकिंग की अवधारणा एवं कार्यप्रणाली को समझ सकेंगे।
- भारत में वाणिज्यिक बैंकिंग एवं बैंकिंग कानून को समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

बैंक का प्रमुख कार्य साख तथा मुद्रा का लेन–देन करना है। बैंक की कार्य प्रणाली को समझने के लिए आवश्यक है कि हम देखें कि किस प्रकार पूँजी की व्यवस्था करते हैं और किस प्रकार बैंकों द्वारा उसका लाभकारी निवेश किया जाता है।

भारत के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में अहम् भूमिका अदा करने वाले बैंकों में केन्द्रीय बैंक के रूप में रिज़र्व बैंक का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस इकाई के माध्यम से छात्रों को केन्द्रीय बैंक के अर्थ, सिद्धांत एवं कार्य के बारे में जानकारी प्रदान की गयी है। केन्द्रीय बैंक का मुख्य कार्य व्यापारिक बैंक की साख निर्माण शक्ति को निगमित करना है। रिज़र्व बैंक भारत में बैंकिंग व्यवस्था के विकास नियमन एवं आयोजन में सक्रिय है। इस इकाई के माध्यम से आप इन सभी बिन्दुओं पर आवश्यक जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.2 बैंकिंग का सिस्टम

बैक की पूँजी के साधन

बैंक द्वारा पूँजी प्राप्त करने के सामान्यतः निम्नलिखित साधन है:

(1) अंश पूँजी–आधुनिक बैंकों का संगठन प्रायः संयुक्त पूँजी कंपनियों के रूप में किया जाता है, इसलिए ये अन्य कंपनियों के समान अंश बेचकर पूँजी प्राप्त करते हैं। बैंक का संचालक मंडल यह निश्चित करता है कि बैंक की अधिकृत पूँजी कितनी होगी। अधिकृत पूँजी का कुछ भाग निश्चित मूल्य के अंश बाजार में बेचकर प्राप्त किया जाता है। जितनी रकम के अंश बाजार में बेचने का निर्णय किया जाता है उसे बैंक की निर्गमित पूंजी कहते है तथा इसमें से जो भाग जनता वास्तव में चुकाती है, प्रदत पूँजी कहलाता है। स्वीकृत अंशों की पूरी रकम की माँग तत्काल करने से स्वीकृत तथा प्रदत पूँजी में अंतर समाप्त हो जाता है। बैंक की वास्तविक पूँजी उसकी चुकता अथवा प्रदत पूँजी हो जाती है।

(2) जमाराशियाँः–बैकों द्वारा पूँजी प्राप्त करने का दूसरा साधन जनता से जमा प्राप्त करना है। सभी बैंक विभिन्न प्रकार के खातों में अलग–अलग नियमों के अंतर्गत लोगों की रकम जमा करते है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सभी बैंक स्थायी जमा खाते तथा चालू खाते खोलने की व्यवस्था करते हैं। अच्छे बैंकों के पास जमाराशियों के रूप में पर्याप्त पूँजी एकत्र हो जाती है।

(3) ऋणः–वैसे तो जनता से प्राप्त जमाराशियाँ ही बैंक के ऋण होती हैं, क्योंकि उनकी अदायगी का दायित्व बैंक पर होता है, परंतु असाधारण परिस्थितियों में बैंक अन्य बैंकों–केंद्रीय बैंक, सरकार या वितीय संस्थाओं से भी ऋण लेते हैं। इस प्रकार के ऋणी की आवश्यकता प्रायः तब होती है जब जमाकर्ता इतनी अधिक नकदी की माँग करने लगते है कि बैंक उसे अपने साधनों से पूरा नहीं कर पाता। ऐसे ऋण अल्पकालीन होते हैं तथा मौसमी माँग में वृद्धि से उत्पन्न स्थिति से सामान्य होने पर लौटा दिए जाते हैं।

(4) साख का निर्माणः–बैंकों द्वारा साख निर्माण की विधि का विस्तृत विवरण पहले दिया जा चुका है। साख को पूँजी कहना तो ठीक नहीं होगा। परंतु इसमें संदेह नहीं है कि बैंक साख के निर्माण द्वारा पूँजी की अधिक पूर्ति कर पाने में सफल होते हैं। आधुनिक युग में साख निर्माण द्वारा काफी मात्रा में पूँजी प्राप्त होती है।

(5) सुरक्षित कोषः–बैंक अपने संपूर्ण लाभ को अंशधारियों में नहीं बाँट देते। प्रत्येक बैंक अपने वार्षिक लाभ का एक भाग सुरक्षित कोष के रूप में रखता है, जिसमें उसके पास कुछ वर्षो में एक बड़ी रकम जमा हो जाती है। भारत में 1949 के बैंकिग अधिनियम की धारा 17 के अनुसार प्रत्येक बैंक को अपने लाभ का कम से कम 20 प्रतिशत सुरक्षित कोष में डालना पड़ता है।

बैंक की निवेश नीति

विभिन्न साधनों से प्राप्त पूँजी बैंक के पास बेकार नहीं पड़ी रहती, बल्कि उसके निवेश द्वारा बैंक लाभ कमाता है। बैंक द्वारा किए गए कुछ निवेश अलाभप्रद भी होते हैं, परंतु बैंक की स्थापना का प्रधान उद्देश्य तो पूँजी के निवेश द्वारा लाभ कमाना ही होता है। विभिन्न देशों में आर्थिक परिस्थितियाँ तथा बाजार की दशाएँ अलग–अलग होने के कारण वहाँ बैंकों के निवेश की नीतियाँ भी अलग–अलग होती हैं। बैंकों की निवेश नीति क्या हो, इस संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं बनाए जा सकते। फिर भी बैंक को निवेश नीति निश्चित करते समय बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए।

निवेश नीति का सिद्धांत

सामान्यतः निम्नलिखित सिद्धांतों के आधार पर पूँजी का निवेश करने से बैंक सुरक्षित रूप से लाभ कमाने में समर्थ को सकते हैं:

(1) निधि की सुरक्षाः–निवेश करने समय बैंक का उद्देश्य सुरक्षा सर्वप्रथम होना चाहिए, क्योंकि निवेश के सुरक्षित न रहने पर स्वयं बैंक का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। निवेश की सुरक्षा के लिए कुछ बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है जैसे–(1) बैंक को अपना समस्त धन किसी एक ही व्यक्ति अथवा व्यवसाय को ऋण के रूप में नहीं देना चाहिए। (2) बैंक को यथासंभव दीर्घकालीन ऋण नही देने चाहिए। (3) ऋणी द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली जमानत की भली–भाँति जांच कर लेनी चाहिए और यह देख लेना चाहिए कि जमानत का बाज़ार मूल्य ऋण के मूल्य से अधिक है अथवा नहीं, (4) ऋणी के व्यक्तिगत आचरण तथा चरित्र के विषय में सूचना प्राप्त कर लेनी चाहिए तथा (5) बैकों को चाहिए कि वे सस्ती साख नीति न अपनाए ताकि ऋणियों में अपव्यय की भावना उत्पन्न न होने पाए।

(2) तरलताः–तरलता से अभिप्राय जमा के बदले में नकद मुद्रा देने की क्षमता से है। बैंक का अस्तित्व जनता के विश्वास पर निर्भर करता है और जनता का विश्वास इस बात पर आधारित रहता है कि बैंक में जमाराशि को नकद मुद्रा में परिवर्तित करने की क्षमता सदा होगी। तरलता की दृष्टि से ये बातें आवश्यक है: (1) बैंक का सर्वाधिक तरल साधन नकद कोष है, इसलिए साधारणतः अपनी कुल जमाओं का 20 से 25 प्रतिशत तक बैंक अपने पास नकदी के रूप में रखना चाहिए। (2) बैंक को चाहिए कि उन साधनों में निवेश करे, जिसमें बिना क्षति के स्थानापरिवर्ती साध्यता का गुण हो जैसे बैंक के अभियोचित एवं अल्पकालीन ऋण तथा अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूतियों एवं उच्चकोटि के वाणिज्यिक पत्र जैसे अंश व ऋणपत्र आदि, (3) बैंक को केवल उन्हीं सरकारी प्रतिभूतियों तथा उच्चकोटि के व्यावसायिक पत्रों में निवेश करना चाहिए जो कुछ आवश्यक शर्तों की पूर्ति करते है तथा केंद्रीय बैंक द्वारा पुनः कटौती के लिए स्वीकार किए जा सकते हैं, ताकि संकट की स्थिति में बैंकों के द्वारा केंद्रीय बैंक की अंतिम सहायता के रूप में सहायता प्राप्त की जा सके।

स्टीड के अनुसार, ''बैंक को केवल कार्यशील पूँजी की पूर्ति के लिए ही ऋण देना चाहिए, अचल या स्थायी पूँजी बनाने के लिए नहीं।''

(3) लाभदायकताः—चूँकि बैंक का उद्देश्य अपने निवेश द्वारा लाभ कमाना होता है, इसलिए बैंक को अपने धन का इस प्रकार निवेश करना चाहिए कि उसे नियमित रूप से पर्याप्त मात्रा में लाभ प्राप्त होता रहे। इस संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रायः तरलता तथा लाभदायकता दोनों एक दूसरे से विपरीत होते है। नकद कोष पूर्णतः तरल साधन हैं परंतु इससे कोई आय प्राप्त नहीं होती। दूसरी ओर दीर्घकालीन ऋण तथा अग्रिम अधिक लाभदायक होते है, परंतु तरल नहीं होते।

(4) जोखिम का विभिन्नीकरणः—बैंकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके अधिकांश धन का निवेश एक ही प्रकार के ऋणों, व्यवसायों तथा प्रतिभूतियों में न हो। बैंकों को अपना धन विविध प्रकार के ऋणों अथवा व्यवसायों आदि में लगाना चाहिए ताकि एक ओर ही हानि को दूसरी ओर के लाभ से पूरा किया जा सके। इनके अतिरिक्त जैसा पहले कहा गया है समस्त ऋण एक ही व्यक्ति अथवा फर्म को देने के बजाय अनेक व्यक्तियों तथा फर्मो को छोटे—छोटे ऋण देना अधिक अच्छा होता है।

(5) प्रतिभूतियों की विक्रेयताः—सुरक्षा तथा तरलता की दृष्टि से ऐसी प्रतिभूतियों में निवेश करना अच्छा होता है जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर आसानी से बाजार में बेचा जा सके। सरकारी तथा उतम श्रेणी की व्यावसायिक प्रतिभूतियों, अच्छी कंपनियों के अंशों तथा ऋणपत्रों, विनिमयसाध्य साख पत्रों तथा तैयार माल की जमानत पर ऋण देने से बैंकों द्वारा निवेश करना अच्छा होता है। इसके विपरीत, अचल संपति के आधार पर दिया गया ऋण अच्छा नहीं माना जा सकता है।

(6) अन्य सिद्धांतः—बैंकों को निवेश करने समय यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि (1) यथासंभव निवेश ऐसी प्रतिभूतियों अथवा वस्तुओं में किया जाय जिनकी कीमतों में अपेक्षाकृत अधिक स्थिरता रहती है। (2) यथासंभव ऐसी प्रतिभूतियों में निवेश को प्राथमिकता दी जाय जो आय कर से मुक्त हो, अथवा जिन पर कर कम लगता हो। (3) बैंकों को अपनी निवेश नीति सरकार और केंद्रीय बैंक द्वारा निर्धारित नियमों के आधार पर तय करनी चाहिए।

बैंकों के निवेशों के प्रकार

बैंक के निवेशों को दो भागों में बाँटा जा सकता है (क) अलाभकर निवेश तथा (ख) लाभकर निवेश। बैंक को दोनों प्रकार के निवेशों में धन लगाना पड़ता है। बैंक के सफल संचालन के लिए इन दोनों निवेशों में उचित संतुलन बनाए रखना आवश्यक होता है।

(क) अलाभकर निवेशः—अलाभकर निवेश से बैंक की किसी प्रकार की प्रत्यक्ष आय प्राप्त नहीं होती, परंतु सुरक्षा तथा तरलता की दृष्टि से इस प्रकार के निवेश काफी महत्वपूर्ण होते है। अलाभकर निवेश दो प्रकार के होते हैः (1) नकद कोष, तथा (2) मृत स्कन्ध।

(1) नकद कोषः—ऐसा कहा जाता है कि नकद कोष बैंकों के लिए सुरक्षा की प्रथम पंक्ति है। नकद कोष प्रत्येक बैंक की तरल परिसंपत्ति होता है। बैंक के पास यथेष्ट नकद कोष न

होने पर संभव है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में यह ग्राहकों की नकदी की माँग को पूरा न कर सके। जिससे बैंक के प्रति ग्राहकों का अविश्वास उत्पन्न हो जाय और बैंक का अस्तित्व खतरे में पड़ जाय। 1930 की मंदी में विफल होने वाले अनेक बैंकों की आर्थिक स्थिति खराब नहीं थी परंतु ग्राहकों को नकद रकम भुगतान न कर सकने के कारण बंद हो गये।

नकद कोषों का मात्रा का निर्धारण–बैंक को कितना नकद कोष रखना चाहिए, इसके लिए निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। देश, काल तथा बैंक की स्थिति अलग–अलग होने पर विभिन्न बैंको की नकद कोष की आवश्यकता में भी अंतर होता है। आवश्यकता से अधिक नकद कोष रखने पर बैंक के लाभकर निवेश की मात्रा कम हो जाती है। इसलिए कोष की मात्रा के निर्धारण में बहुत सावधानी से काम लेना पड़ता है। निम्नलिखित तत्वों के आधार पर बैंक नकद कोष की मात्रा का निर्धारण कर सकता है।

(i) वैधानिक आवश्यकताः–अधिकांश देशों में सरकार अथवा केंद्रीय बैंक वैधानिक रूप से बैंकों के नकद कोषों की न्यूनतम मात्रा निश्चित कर देते है। विधान के अनुसार बैंक नकद कोष अपने पास रखते हैं तथा उनका कुछ भाग केंद्रीय बैंक के पास रखते हैं।

(ii) परम्पराः–प्रत्येक देश में बड़े–बड़े बैंक अपने अनुभव के आधार पर नकद कोष रखने से संबंधित परम्पराएं निश्चित करते हैं जिनका अनुसरण अन्य बैंक भी करते हैं।

(iii) निवेश की प्रकृतिः–यदि बैंक के अधिकांश निवेश तरल आदेयों जैसे विनिमय बिलों, अल्पकालीन ऋणों, विनिमयशील प्रतिभूतियों आदि में है तो वे कम मात्रा में नकद कोष रखकर भी काम चला सकते हैं।

(iv) जमाराशियों का आकारः–बैंकों में ग्राहकों की बड़ी बड़ी रकम जमा होने पर बैंकों को अधिक मात्रा में नकद कोष रखने की आवश्यकता होगी ताकि बड़ी से बड़ी माँग को पूरा किया जा सके। जब जमाराशियों का आकार छोटा होता है और जमाकर्ताओं की संख्या अधिक होती है तो थोड़ी मात्रा में नकद कोष रखने से ही चल जाता है।

(v) जमाराशियों का स्वरूपः–यदि किसी बैंक की अधिकतर जमाराशियाँ चालू खातों में हैं तो बैंक को अधिक मात्रा में नकद कोष रखने पडते है। इसके विपरीत निश्चितकालीन अथवा बचत खातों में जमाराशियों की मात्रा अधिक होने पर थोड़े नकद कोष से काम चल सकता है।

(vi) ग्राहकों की प्रकृतिः–जिस बैंक में सट्टेबाजों तथा बड़े व्यापारियों के खाते अधिक होते हैं जैसे बड़ी मात्रा में नकद कोष रखने होते है, क्योंकि उसके ग्राहकों को धन की माँग बराबर बनी रहती है। यदि बैंक के अधिकांश ग्राहक मध्यवर्गीय नौकरीपेशा लोग है तो बैंक को अधिक मात्रा में नकद कोष नहीं रखने पड़ते, क्योंकि वे लोग प्रायः अधिक रकम नहीं निकालते।

(vii) बैंकिग विकास तथा चैक का प्रयोगः–यदि देश में बैंकिग का पर्याप्त विकास हो चुका है तथा लोगों में चैकों द्वारा भुगतान करने की आदत है तो बैंक को अधिक नकदी रखने की

आवश्यकता नहीं होती। बैंकों के विकास के अभाव में नकद लेन–देन की आदत होने पर बैंकों को अधिक नकद कोष रखने पडते है।

(viii) समाशोधन गृहों का विकासः–जिन स्थानों पर समाशोधन गृहों की सुविधा उपलब्ध होगी, चैकों का तत्काल समाशोधन होने के कारण जनता को चैकों का प्रयोग करने की प्रोत्साहन मिलेगा। बैंक चैकों का नकद भुगतान न करके अधिकांश भुगतान केवल खातों की प्रविष्टियों द्वार ही तय कर लेगें। इस प्रकार कम नकद कोष रखने पडेगें।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए बैंक अपनी परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुसार अपने पास नकद कोष रखते है। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि बहुत कुछ जनता द्वारा बैंक के प्रति विश्वास की मात्रा पर निर्भर करता है। जनता का बैंक में विश्वास बने रहने पर बैंक के सामने साधारणतया कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होती, परंतु जनता का विश्वास न रहने पर बैंक का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है।

(2) मृत स्कन्धः–बैंक के प्रत्यक्ष रूप से कोई आर्थिक लाभ न होने पर भी अपना व्यवसाय चलाने के लिए भवनों का निर्माण करना पड़ता है, कार्यालयों के लिए फर्नीचर और पंखे आदि की व्यवस्था करनी पडती है तथा सुरक्षा के लिए मज़बूत अलमारियाँ, तिजोरियाँ और लॉकर आदि रखने पड़ते है। चूँकि आवश्यकता पड़ने पर इन्हें आसानी से नहीं बेचा जा सकता इसलिए इन्हें मृत स्कन्ध कहते हैं।

अपनी प्रतिष्ठा को बढाने के लिए प्रायः बैंक अपने कार्यालयों के लिए विशाल एवं सुंदर भवन बनवाते है। इस संबंध में बैंक को यह देखना चाहिए कि कार्यालय के लिए भवन किराए पर लेना सस्ता होगा अथवा उसका निर्माण करना। डा. राव के शब्दों में बैंक के लिए ईट तथा चूने में पूँजी लगाने के स्थान पर शुद्ध नकदी के रूप में रखना अधिक श्रेष्ठ है।

(ख) लाभकर निवेशः–बैंकों द्वारा लाभकर निवेश अनेक मदों में किए जाते है। इनका वर्णन नीचे किया गया है।

(i) माँग पर अथवा अल्पसूचना राशिः–बैंक द्वारा दिए गए ये ऐसे ऋण होते है जिन्हें बैंक बिना किसी पूर्व सूचना के अथवा अल्प सूचना देकर वापस ले सकता है। इस प्रकार के ऋणों पर बैंक को बहुत कम ब्याज प्राप्त होती है परंतु अति अल्पकालीन होने के कारण ये बैंक के अत्यधिक तरल निवेश होते है। इस प्रकार के ऋणों में निवेश करने से बैंक अपने साधनों में तरलता बनाए रखता है तथा साथ में ब्याज भी कम लेता है। इस प्रकार एक साथ दो लाभ प्राप्त हो जाते हैं। यदि नकद कोष को बैंक की रक्षा की प्रथम पंक्ति कहा जाय तो अल्पसूचना राशि की रक्षा की द्वितीय पंक्ति कहा जा सकता है। भारत में अधिकांश अल्प सूचनार्थ ऋण प्रायः एक बैंक द्वारा दूसरे बैंक को दिए जाते हैं।

(ii) बिलों की कटौती करनाः–व्यापारिक बिलों की कटौती करके भी बैंक अपने धन का निवेश करते है। इस प्रकार का निवेश अल्पकालीन होने के साथ अच्छी आय देने वाला, सुरक्षित तथा तरल होता है, इसलिए इसे बैंक की तृतीय रक्षा पंक्ति भी कहा जाता है। बिलों की कटौती के आधार पर बैंकों द्वारा ऋण देने से बिलों के प्रयोग को प्रोत्साहन मिलता है तथा बैंकों को आय प्राप्त होती है। बिल की अवधि समाप्त होने से पूर्व यदि बैंक को रकम

की आवश्यकता पड़ जाय तो बिल बाज़ार में बिक्री अथवा केंद्रीय बैंक से बिल की पुनःकटौती द्वारा बैंक अपनी आवश्यकता को पूरा कर सकता है। इसलिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि केवल प्रथम श्रेणी के उतम व्यापारिक बिलों की ही कटौती की जाय ताकि इनकी केंद्रीय बैंक से पुनर्कटौती संभव हो सके।

(iii) कोषागार विपत्र तथा प्रतिभूतियांः–बैंक अपने साधनों का एक भाग कोषागार विपत्रों अथवा ट्रेजरी बिलों में निवेश करते है क्योंकि इससे सरकार को सहायता मिलती है तथा बैंकों को भी आय प्राप्त होती है। ये बिल प्रायः अल्पकालीन होते है तथा इन्हें आसानी से बेचा जा सकता है, इसलिए इनमें किए गए निवेश में तरलता का गुण होता है। लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से बैंक अपने धन का महत्वपूर्ण भाग विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियाँ खरीदने में भी लगाते है। परंतु यह बात ध्यान में रखने की है कि बैंकों को प्रतिभूतियों में निवेश करते समय निवेश में तरलता, सुरक्षा एवं आय के सिद्धांतों को सामने रखना चाहिए तथा यथासंभव ऐसी प्रतिभूतियों में लेन–देन करना चाहिए, जिनके मूल्य में स्थिरता रहती है और जिनमें विक्रयशीलता का गुण होता है।

(iv) ऋण तथा अग्रिमः–प्रायः सभी वाणिज्य बैंक अपने साधनों का बहुत बड़ा भाग ऋणों तथा अग्रिमों में निवेश करते है। इनसे बैंकों को काफी आय प्राप्त होती है। चूँकि ऋण तथा अग्रिम उचित धरोहर के आधार पर ही दिए जाते हैं, इसलिए इनमें सुरक्षा का गुण भी होता है। इनसे व्यापारिक तथा औद्योगिक संस्थाओं की धन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, और इस प्रकार देश के आर्थिक विकास में सहायता मिलती है।

ऋण देने में सावधानियाँ–ऋण देते समय बैंकों को उचित सावधानी रखनी चाहिए। बैंकों द्वारा ऋण व्यक्तियों को भी दिए जाते हैं तथा संस्थाओं को भी। ऋण देने में कुछ विशेष सावधानियों की आवश्यकता है, जैसे

1. किसी भी ग्राहक को बहुत लंबी अवधि के लिए ऋण नहीं देना चाहिए।
2. किसी भी ग्राहक को बहुत बड़ी रकम का ऋण नहीं देना चाहिए, बल्कि ऋणों का विकेंद्रीकरण की नीति अपनानी चाहिए।
3. सट्टे के कार्य तथा उपभोग के लिए ऋण देना अच्छा नहीं होता जबकि उत्पादक कार्यो के लिए दिए गए ऋण स्वयं साध्य होते है और उनमें अधिक सुरक्षा रहती है।
4. ऋणों का बार–बार व आसानी से नवीनीकरण नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसे ऋणों की वसूली करना अंत में कठिन हो जाता है।
5. ऋणों के लिए उचित व पर्याप्त जमानत प्राप्त करनी चाहिए तथा जमानत के मूल्य से कम मूल्य का ऋण देना चाहिए।
6. ऋण लेने वाले की साख तथा उसके व्यवसाय की ठीक से जाँच कर लेनी चाहिए।
7. बैंकों में पारस्परिक स्पर्द्धा के कारण सस्ते ऋणों की नीति बहुत हानिकारक होती है, इसलिए इसे कभी–कभी नहीं अपनाना चाहिए।

ऋणों के लिए जमानत

ऋणों की सुरक्षा के लिए बैंक अपने ग्राहकों से किसी न किसी प्रकार की जमानत अवश्य लेता है। ये जमानतें प्रायः दो प्रकार की होती है–(1) व्यक्तिगत जमानत तथा (2) सहायक जमानत।

(1) व्यक्तिगत जमानतः–बिना किसी माल या संपत्ति को जमानत के रूप में लिए, व्यक्तिगत साख अथवा जमानत के आधार पर दिए गए ऋण आरक्षित अथवा स्वच्छ ऋण कहलाते हैं। व्यक्तिगत जमानत अथवा प्रतिभूति के आधार पर ऋण देने के पूर्व बैंक ऋणी की आर्थिक स्थिति, व्यवसाय, साख, व्यापारिक कुशलता तथा चरित्र आदि से संबंधित विश्वसनीय जानकारी प्राप्त कर लेता है। भारत में व्यक्तिगत जमानत पर दिए जाने वाले ऋणों में अधिकवर्ष सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। कभी–कभी ऋणी की व्यक्तिगत जमानत के अतिरिक्त किसी अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति अथवा संस्था की गारंटी भी माँगी जाती है, जिसके अंतर्गत ऋणों की रकम न चुकाने पर गारण्टी करने वाला दायित्व को अपने ऊपर लेने का आश्वासन देता है। ऐसे ऋणी के दो हस्ताक्षरों वाले कागजी ऋण कहते हैं। व्यक्तिगत जमानत केवल एक विशिष्ट ऋण से संबंधित होने पर उसे विशिष्ट व्यक्तिगत जमानत कहते हैं तथा भविष्य में लिए जाने वाले समस्त ऋण से संबंधित होने पर उसे चालू जमानत कहते हैं।

(2) सहायक जमानतः–ऋण की सुरक्षा के लिए ऋणी द्वारा बैंक के पास जमानत के रूप में रखी गई भौतिक संपत्ति तथा वस्तएँ सहायक जमानत कहलाती है। इस प्रकार की जमानत बैंक के पास प्रायः तीन प्रकार से रखी जाती है–

(1) रहन अथवा धरणाधिकारः–इसमें जमानत के रूप में रखी गई संपत्ति बैंक के पास रहती है तथा ऋण वसूल न होने पर बैंक अदालत की आज्ञा से इसे बेचकर अपना ऋण वसूल कर सकता है।

(2) गिरवीः–इसमें भी संपत्ति बैंक के पास रहती है तथा ऋण का भुगतान न होने की दशा में बैंक ऋणी को सूचना देकर जमानत की संपत्ति को बेच सकता है। इसके लिए अदालत की आज्ञा की आवश्यकता नहीं होती।

(3) बन्धकः–जब भुगतान के रूप में भूमि, भवन, आदि अचल संपत्ति की जमानत दी जाती है तो वह बैंक के पास नहीं रहती, उस पर बैंक का अधिकार मात्र होता है परंतु ऋणी द्वारा भुगतान न करने पर इस संपत्ति पर बैंक का स्वामित्व हो जाता है।

सामान्यतः निम्नलिखित प्रकार की भौतिक संपत्तियों को सहायक जमानत के रूप में स्वीकार किया जाता है।

(क) स्टॉक एक्सचेन्ज प्रतिभूतियांः–स्टॉक एक्सचेन्ज से नियमित रूप से क्रय विक्रय की जाने वाली प्रतिभूतियों में सरकारी अर्द्ध सरकारी स्वायत, संस्थाओं तथा अन्य संस्थाओं द्वारा जाती की गई प्रतिभूतियों के अतिरिक्त व्यावसायिक तथा औद्योगिक कंपनियों के अंश, ऋणपत्र, प्रतिज्ञा पत्र तथा अन्य प्रकार के विनिमयसाध्य साख पत्र सम्मिलित किए जाते है। इन प्रतिभूतियों की जमानत पर ऋण देना बैंकों के लिए अच्छा समझा जाता है क्योंकि इससे

अनेक लाभ होते हैः(1) इन्हें आसानी से बेचा जा सकता है, इसलिए ये बहुत तरल होती है। (2) इनके स्वामित्व परिवर्तन में कोई कठिनाई नहीं होती। (3) इनका मूल्यांकन करने के कोई कठिनाई नहीं होती। (4) इनके मूल्य में अधिक उतार–चढ़ाव नहीं होते तथा (5) इनकी जमानत पर स्वयं बैंक भी ऋण प्राप्त कर सकता है।

इन प्रतिभूतियों में अनेक गुण होने के कारण बैंक इन्हें सदा प्राथमिकता देते है परंतु ऐसी प्रतिभूतियों को स्वीकार करने समय बैंक को यह चाहिए कि कुछ बातों के प्रति सावधान रहे जैसे (1) इनके स्वामित्व में दोष न हो तथा उनका हस्तांरण बैंक के पक्ष में उचित प्रकार से किया गया हो। (2) इनका किसी मान्य शेयर बाजार में क्रय विक्रय होता हो, (3) इनके मूल्य में अधिक परिवर्तन न हो तथा (4) पूर्ण प्रदत हों।

(ख) माल और माल के स्वत्व लेख्यः–अनेक बार माल के गोदाम पर बैंक अपना ताला लगाकर उनकी जमानत पर ऋण देते हैं। जैसे–जैसे ऋणों का भुगतान होता जाता है गोदाम से माल निकाला जा सकता है। माल के स्वत्व लेख्य जैसे गोदाम की रसीद, रेलवे की रसीद डाक वारण्ट आदि की जमानत पर भी बैंक द्वारा ऋण दिया जाता है।

माल तथा माल के स्वत्व लेख्य की जमानत पर ऋण देने मे ये लाभ है (1) इनको किसी भी समय आसानी से बेचा जा सकता है तथा ऋण का भुगतान न होने पर माल की बिक्री से बैंक रकम प्राप्त कर सकता है। (2) ये ऋण प्रायः अल्पकालीन होते है। (3) मूल्यांकन में विशेष कठिनाई नहीं होती (4) चूँकि मूल्यों में परिवर्तन एकदम नहीं होते इसलिए गिरावट आरम्भ होते ही सुरक्षा के लिए उचित प्रबंध किया जा सकता है। अतः जोखिम कम रहता है तथा (5) व्यावसायिक उन्नति को प्रोत्साहन मिलता है।

परंतु माल तथा माल के स्वत्व लेख्य की जमानत पर ऋण देने में कई दोष तथा कठिनाई भी है–(1) अच्छे गोदामों के अभाव के कारण माल के खराब हाने का भय रहता है। (2) माल का मूल्य गिर जाने पर पूरा ऋण वसूल करने में कठिनाई होती है। (3) माल की विभिन्न किस्मों के कारण उनका सही मूल्य आँकने में कठिनाई होती है। (4) गोदाम में माल रखते समय धोखे का भय रहता है जैसे असली माल के बीच नकली या घटिया माल भरा जा सकता है। (5) स्वत्व लेख्य में धोखा होने की संभावना रहती है।

बैंक को चाहिए कि वह कुछ सावधानियां रखे जैसे–(1) ऋण की रकम तथा माल के मूल्य में यथेष्ट अंतर होना चाहिए, (2) शीघ्र बिकने वाले माल को ही जमानत के रूप में स्वीकार करना चाहिए। (3) माल के मूल्य तथा अधिकार पत्रों को ठीक प्रकार से जांच कर लेनी चाहिए। (4) जमानत के रूप में रखा गया माल न तो शीघ्र नष्ट होने वाला हो और न ही उसके मूल्यों में बहुत उतार–चढाव होता हो। (5) ऋण प्रार्थी विश्वसनीय तथा ईमानदार हो। (6) ऋण का उद्देश्य व्यावसायिक हो न कि मुनाफाख़ोरी के लिए अधिक समय तक माल रोकना। (7) गोदामों का प्रबंध कुशल, ईमानदार तथा उतरदायी कर्मचारियों के हाथ में हो तथा (8) माल का गोदाम सहित बीमा करा लेना चाहिए।

(ग) विनिमय बिल–विनिमय बिलों की परिपक्वता के पूर्व उनकी कटौती करके उनका मूल्य चुका देने पर ये बिल बैंक के अधिकार में आ जाते है तथा इनके बदले में दी गयी रकम की जमानत के रूप में ये बैंक के पास रहते है।

इनके अनेक लाभ होते हैः–(1) इन बिलों के मूल्य स्थिर रहते है, (2) आवश्यकता पडने पर इन्हें आसानी से बेचा जा सकता है तथा केंद्रीय बैंक से पुनः कटौती के आधार पर रकम प्राप्त की जा सकती है तथा (3) इनकी वसूली में आसानी होती है क्योंकि बिल के दोनों पक्ष उतरदायी होते है।

विनिमय बिलों को स्वीकार करने में सबसे बड़ा दोष यह होता है कि यदि बिल को स्वीकार करने वाला बिल का भुगतान करने से इंकार कर देता है तो बैंक के लिए काफी असुविधा हो जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि बैंक उतम श्रेणी के बिलों को ही स्वीकार करें तथा इनके लिखने वाले और स्वीकार करने वाले पक्षों के चरित्र, साख एवं आर्थिक दशा आदि से संबंधित पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर लें।

(घ) संपत्तिः–संपत्ति दो प्रकार की होती है–चल तथा अचल। दोनों प्रकार की संपत्तियों के आधार पर बैंक ऋण देते हैं। चल संपत्ति के अंतर्गत माल तथा स्टॉक एक्सचेन्ज प्रतिभूतियों के अतिरिक्त सोना, चॉदी तथा अन्य मूल्यवान वस्तुएँ आती है। बैंकों द्वारा बहुमूल्य धातुओं तथा आभूषणों के आधार पर भी ऋण दिया जाता है। चूँकि इन्हें ऋण का भुगतान न होने पर तत्काल बाजार में बेचा जा सकता है, इसलिए इन्हें अत्यन्त तरल संपत्ति समझा जाता है। परंतु धातुओं आदि की जमानत पर ऋण देने के पूर्व बैंकों को चाहिए कि इनकी वास्तविक शुद्धता का अनुमान लगवा ले तथा उनका सही मूल्यांकन करा लें।

जमीन, मकान, दुकान, मशीन आदि अचल संपत्ति है। अचल संपत्ति के आधार पर ऋण देने से लाभ ये है (1) किसान, जो अपनी भूमि के अतिरिक्त अन्य प्रकार की जमानत नहीं दे पाता, अचल संपत्ति के आधार पर बैंक से ऋण प्राप्त कर सकते हैं। (2) व्यापारी वर्ग के लोगों को भी अन्य कोई जमानत के न रहने पर अपनी अचल संपत्ति की जमानत पर ऋण मिल जाता है, (3) मकान तथा जमीन की जमानत पर ऋण देकर बैंक भवन निर्माण कार्यों में सहायक होते है तथा (4) संपत्ति के मूल्य में विशेष कमी आने की आशंका नहीं होती।

परंतु व्यावहारिक रूप में बैंक अचल संपत्ति की जमानत पर ऋण देना उचित नहीं समझते, क्योंकि इसमें कई दोष है–(1) संपत्ति को आसानी से उचित मूल्य पर नहीं बेचा जा सकता, (2) संपत्ति के स्वामित्व को तय करना कठिन होता है और इसके लिए कानूनी सलाह लेनी पडती है। (3) ऋणी द्वारा उसी संपत्ति पर अनेक व्यक्तियों से ऋण ले लेने का भय रहता है। (4) संपत्ति का उचित मूल्यांकन करना भी कठिन होता है। (5) संपत्ति के मूल्य में ह्रास आदि के कारण कमी आ जाती है तथा (6) भूमि अथवा मकान को बंधक आदि रखने के लिए अदालती कार्यवाही करनी पड़ती है।

बैंक का स्थिति विवरण

बैंक का स्थिति विवरण अथवा चिट्ठा उसके आदेय तथा दायित्व का विवरण होता है। किसी भी संस्था की आर्थिक स्थिति देखने के लिए उसका स्थिति विवरण महत्वपूर्ण होता है परंतु इस प्रकार के विवरण का महत्व बैंकों के लिए अत्यधिक है। बैंक का मुख्य कार्य लेन–देन का व्यापार है और उसे अपनी लेनदारी तथा देनदारी को समतुल्य करना होता है। इस प्रकार किसी बैंक के सम्पूर्ण व्यवसाय तथा वास्तविक स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए उसका स्थिति विवरण देखना आवश्यक होता है। क्राउथर ने लिखा है कि बैंक का संपूर्ण व्यवसाय उसके स्थिति विवरण में होता है। इसके अतिरिक्त विवरण का यह भी गुण होता है कि उसे एक दृष्टि में देखने से वे अनुपात प्रकट हो जाते है जिन पर बैंक कार्य कर रहा होता है।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों के स्थिति विवरण का रूप कानून द्वारा निश्चित होता है और प्रत्येक बैंक को एक निश्चित अवधि के बाद इसे प्रकाशित करना पड़ता है। स्थिति विवरण में दो कॉलम होते हैं। बाएं कॉलम में पूँजी तथा दायित्व और दाएं कॉलम में संपत्ति तथा आदेय दिखाए जाते हैं। स्थिति विवरण में दोनों कॉलमों में संपत्ति की विभिन्न रकमों का जोड़ सदा बराबर होता है। एक वाणिज्यिक बैंक के स्थिति विवरण का सरल तथा संक्षिप्त नमूना आगे दिया गया है।

पूँजी तथा दायित्व	राशि	संपत्ति तथा आदेय	राशि
1. पूँजी– अधिकृत पूँजी निर्गमित पूँजी परिदत पूँजी अधिमान प्राप्त अंश साधारण अंश तथा आस्थगित अंश 2. रक्षित कोष तथा अन्य रक्षित कोष 3. जमाएँ तथा अन्य खाते 4. अन्य बैंकों, अभिकर्ताओं आदि के ऋण 5. शोधनीय बिल 6. वसूली हेतु बिल, विपरीत ओर पर वसूली वाले बिल होने पर 7. अन्य दायित्व		1. हस्तगत नकदी, रिजर्व बैंक तथा स्टेट बैंक में 2. अन्य बैंको के पास धन–चाले खातों में 3. माँग पर अथवा अल्पसूचना राशि 4. निवेश–लागत भाव या उससे कम पर केंद्रीय तथा राज्य सरकारों की प्रतिभूतियाँ केंद्र तथा अन्य न्यासधारी प्रतिभूतियाँ केंद्र और राज्यों के ट्रेजरी बिल सहित। पूर्ण दत अंश आंशिक अंश ऋणपत्र तथा बॉण्ड अन्य निवेश स्वर्ण 5. अग्रिम, ऋण, नकद, साख,	

8. स्वीकृतियाँ, बेचान, तथा अन्य देनदारियाँ, विपरीत ओर पर वसूली वाले लिखे अनुसार 9. लाभ और हानि खाता। 10. आकस्मिक दायित्व		अधिकवर्ष इत्यादि खरीदे अथवा डिस्काउण्ट किए गए बिल। 6. विपरीत ओर पर वसूली के लिए प्राप्य बिल। 7. विपरीत ओर पर लेखा संघटक क स्वीकृतियों के लिए देनदारियाँ, बेचान तथा दायित्व 8. बैंक भवन 9. फर्नीचर व अन्य स्थिर सामान 10. अन्य आदेय तथ चॉदी 11. दावों की प्राप्ति हेतु अधिगृहीत गैर बैंकिग आदेय।	

बैंक के दायित्व

(1) पूँजी–संयुक्त पूंजी वाला प्रत्येक बैंक अपनी कार्यशील पूँजी का एक महत्वपूर्ण भाग अंश पूँजी के रूप में प्राप्त होता है। बैंक की अधिकृत पूँजी निर्गमित पूँजी प्रार्थित पूँजी तथा परिदत पूँजी को बैंक अपने स्थिति विवरण में अलग–अलग दिखाते हैं। बैंक की पूँजी उसका दायित्व इसलिए होती है कि यह पूँजी अंशधारियों की होती है तथा बैंक उनका देनदार होता है। भारत में बैकों की निर्गमित अथवा स्वीकृत पूँजी का अधिकृत पूँजी से आधा तथा प्रदत पूँजी का स्वीकृत पूँजी से आधा होना आवश्यक है।

(2) कोष निधिः–बैंक अपने संपूर्ण लाभ का विवरण अंशधारियों में न करके उसका एक भाग संचित कोष में रखता है। इससे बैंक की कार्यशील पूँजी में वृद्धि होती है तथा बैंक की आर्थिक स्थिति दृढ़ होती है। कुछ देशों में सुरक्षित कोष का निर्माण करना अनिवार्य होता है। इस कोष के धन का प्रयोग केवल संकट काल में ही किया जाता है।

(3) जमाराशि तथा अन्य खातेः–बैंक के दायित्वों में सबसे बड़ी मद जमाराशियों की होती है। चालू, बचत तथा स्थायी खातों में प्राप्त होने वाली राशि बैंकों को अलग–अलग दिखानी पड़ती है। जमाराशियों का एक भाग ऋणों से उत्पन्न होता है तथा दूसरा नकदी के रूप में प्राप्त होता है। नकद जमाराशि, जिसे प्राथमिक जमा कहा जाता है, बैंक की साख सृजन की शक्ति का आधार होती है।

(4) अन्य बैंकों, अभिकर्ताओ आदि के ऋणः–आवश्यकता पड़ने पर बैंक अन्य बैंकों अथवा केंद्रीय बैंक तथा अभिकर्ताओं आदि से ऋण लेता है, जो प्रायः अल्पकालीन होता है। भारत के प्रत्येक बैंक अन्य देशों अथवा विदेशी बैंकों से प्राप्त ऋण की राशि को अपने स्थिति विवरण में अलग से दिखाता है।

(5) शोधनीय बिलः—इस मद में उन बिलों की कुल राशि आती है, जिनके भुगतान करने का दायित्व बैंक पर होता है।

(6) अन्य बिलः—इसके अंतर्गत उन बिलों की राशि दिखाई जाती है जो ग्राहकों द्वारा समय समय पर बैंकों को उनका भुगतान वसूल करने के लिए भेजे जाते हैं और जिनकी राशि को बैंक ग्राहकों के खाते में जमा कर देता है। इस प्रकार के बिल स्थिति विवरण में दायित्व के रूप में भी दिखाए जाते हैं तथा आदेय के रूप में, क्योंकि एक ओर तो बैंक इनका लेनदार होता है और दूसरी ओर इनका भुगतान प्राप्त कर ग्राहकों के खातों में जमा करना होता है।

(7) अन्य दायित्वः—कुछ अन्य प्रकार के दायित्वों की राशि इस मद में दिखायी जाती है जैसे—अदत लाभांश, आयकर के लिए आयोजन, कर्मचारियों को बोनस, कर्मचारियों की सहायता खाता, ब्राचों के पारस्परिक जमा खर्च, विविध देनदारी खाता, अनर्जित प्राप्त आय, माँग पर अग्रिम भुगतान इत्यादि।

(8) स्वीकृतियाँ, बेचान तथा इसी प्रकार के अन्य दायित्वः—बैंकों द्वारा अपने ग्राहकों के लिए स्वीकार किए गए विनिमय बिल तथा साख पत्रों पर दी गयी गारण्टी आदि की राशि इस मद में सम्मिलित होती है। यह बैंक के दायित्व तथा आदेय दोनों ही माने जाते हैं, क्योंकि इनका भुगतान करना बैंक का दायित्व होता है। परंतु इनकी रकम ग्राहकों से प्राप्त होती है।

(9) लाभ और हानि खाताः—स्थिति विवरण में लाभ तथा हानि दोनों ही दायित्वों के रूप में दिखाये जाते है। चूंकि लाभ की राशि का वितरण अंशधारियों में करना होता है, इसलिए यह बैंक की देनदारी होती है।

(10) आकस्मिक देनदारीः—इसके अंतर्गत बैंक ऐसी देनदारियाँ दिखाता है, जिनकी राशि निश्चित नहीं होती, परंतु भविष्य में उत्पन्न होने की पूर्ण सम्भावना होती है। इस प्रकार की देनदारी का अनुमान लगाकर स्थिति विवरण में सबसे नीचे दिखाया जाता है।

बैंक की लेनदारी अथवा आदेय

(1) नकदः—ग्राहकों की नकद मुद्रा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा अन्य दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बैंक कुछ नकद कोष अपने पास रखते हैं और कुछ केंद्रीय बैक अथवा किसी अन्य बैंक के पास रखते हैं। स्थिति विवरण में हस्तगत नकदी तथा अन्य बैंकों के पास रखी गयी नकदी को अलग—अलग दिखाया जाता है।

(2) अन्य बैंकों में जमाः—बैंकों में पारस्परिक लेन देन के कारण कुछ रकम दूसरे बैंको के पास चालू खातों से जमा रह जाती है, जिसे स्थिति विवरण में अलग से दिखाया जाता है।

(3) माँग पर तथा निवेश राशिः—बैंक के ऐसे अल्पकालीन ऋण जिन्हें बिना किसी पूर्व सूचना के अथवा एक अत्यंत अल्पकालीन सूचना देकर वसूल किया जा सकता है, इस मद के अंतर्गत दिखाए जाते हैं।

(4) निवेशः—इस मद में विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में लगाई गई रकम, ट्रेजरी बिल, अंश, ऋणपत्र, ब्राण्ड्स, स्वर्ण आदि में किए जाने वाले निवेश अलग अलग दिखाए जाते है। ये सब निवेश प्रतिभूतियों आदि के लिखित मूल्य अथवा उससे कम मूल्य पर होते है।

(5) अग्रिमः—इसके अंतर्गत बैंक के अग्रिम धन, ऋण, नकद साख तथा अधिकवर्ष की रकम दिखाई जाती है। खरीदे अथवा डिकाउण्ट किए गए बिलों की राशि भी इसी के अंतर्गत दिखाई जाती है। ऋण की जमानतों तथा ऋणियों की स्थिति के आधार पर बैंक के ऋण और अग्रिम अलग—अलग दिखाए जाते हैं, जैसे—पूर्णतया सुरक्षित ऋण, व्यक्तिगत जमानत पर दिए गए ऋण जिन पर ऋणी की व्यक्तिगत जमानत के अलावा अन्य व्यक्तियों की भी व्यक्तिगत जमानत है, बिना जमानत के ऋण, बैंक के संचालकों तथा अधिकारियों को दिए गए ऋण, ऐसी कंपनियों को दिए गए ऋण जिनसे बैंक के संचालक किसी भी रूप में संबद्ध है, अन्य बैंकों पर ऋण इत्यादि।

(6) वसूली के लिए प्राप्य बिलः—बैंक के पास ग्राहकों की वसूली के लिए आए हुए बिल इसके अंतर्गत दिखाए जाते हैं। चूँकि इनकी वसूली भुगतान ग्राहकों को करना होता है इसलिए ये दायित्वों में भी दिखाए जाते हैं।

(7) स्वीकृतियाँ, बेचान आदिः—इसके अंतर्गत ऐसे बिलों की रकमें दिखाई जाती है जिन्हें बैंक अपने ग्राहकों की ओर से स्वीकार करता है और जिनके भुगतान का दायित्व वह अपने ऊपर लेता है। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से बैंक के दायित्व होते है, परंतु बैंक इनकी रकम ग्राहकों से वसूल करने का अधिकारी होता है, इसलिए ये बैंक के आदेय अथवा लेनदारी भी हैं। इस मद में आदेय तथा दायित्व दोनों एक दूसरे से संतुलित हो जाते हैं।

(8) बैंक भवनः— इसके अंतर्गत बैंक के कार्यालयों के भवनों का मूल्य, घिसावट निकालकर दिखाया जाता है। यह वास्तव में बैंक का सब से कम तरल आदेय होता है।

(9) फर्नीचर तथा अन्य मृत स्कन्धः—भवनों के समान, बैंक के फर्नीचर, पंखे, अलमारियों, लॉकरों आदि का मूल्य भी घिसावट निकालकर अलग से दिखाया जाता है।

(10) अन्य आदेयः— इस मद में अनेक प्रकार के आदेय दिखाए जाते हैं। जैसे विनियोगों पर प्राप्य आय जिसे अभी तक प्राप्त नहीं किया गया है, किराया तथा अन्य सेवा संबंधी वसूलियों जो अभी वसूल करनी है, बैंक के पास स्टेशनरी तथा टिकट आदि।

(11) गैर बैंकिग आदेयः—ये बैंक के ऐसे आदेय है जिनमें बैंक ने स्वेच्छा से निवेश नहीं किया होता, बल्कि जो भुगतान न करने वाले ऋणियों से दावों की पूर्ति में प्राप्त होते है।

स्थिति विवरण के अध्ययन से लाभ

बैंक का स्थिति विवरण बैंक की संपूर्ण आर्थिक स्थिति का चित्रण होता है। इसके अध्ययन के विशेष रूप से उल्लेखनीय लाभ निम्नलिखित हैः

1. बैंक के दायित्वों तथा आदेयों का विश्लेषण करने से बैंक की वर्तमान आर्थिक दशा के संबंध में ज्ञान प्राप्त होता है।
2. चालू वर्ष के स्थिति विवरण को पिछले वर्षों के विवरणों से तुलना करके बैंक की प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है।
3. विभिन्न बैंको की स्थिति विवरण के आधार पर उनकी आर्थिक स्थिति की तुलना की जा सकती है।

4. स्थिति विवरण के प्रकाशन से बैंक से संबंधित सभी व्यक्तियों को उनके हितों के बारे में सूचना मिल जाती है। बैंक के अंशधारी, निपेक्षधारी, देनदार तथा कर्मचारी सभी को उनके हितों से संबंधित सूचना प्राप्त होती है।
5. बैंक में जनता के विश्वास का आधार उनका स्थिति विवरण ही होता है और इसी से जनता को निवेश के लिए रास्ता मिलता है।
6. स्थिति विवरण से बैंक की सुरक्षा तथा तरलता स्थिति का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

3.3 केंद्रीय बैंकिंग (आरबीआई)

केन्द्रीय बैंक: अर्थ, सिद्धांत एवं कार्य

केन्द्रीय बैंक देश का सर्वोच्च बैंक होता है। इसे देश की सम्पूर्ण बैंकिंग तथा मौद्रिक व्यवस्था में केंद्र स्थान प्राप्त होता है तथा यह सम्पूर्ण साख तथा मुद्रा प्रणाली का नियंत्रक होता है। आजकल शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ केन्द्रीय बैंक नहीं हो। बैंक ऑफ़ इंग्लैंड सबसे प्राचीन केन्द्रीय बैंक है जिसने 19 वीं शताब्दी के मध्य से कार्य करना शुरू किया था। यू.एस.ए. में फ़ेडरल रिज़र्व सिस्टम की स्थापना 1913 में हुई। प्रथम विश्व युद्ध के बाद 1920 में ब्रसेल्स में जो अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक सम्मलेन हुआ, उसमें यह तय किया गया कि प्रत्येक देश में एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना की जाए। इस सिफारिश के अनुसार लगभग सभी देशों में केन्द्रीय बैंक की स्थापना की गयी। भारत में देश के केन्द्रीय बैंक के रूप में रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया की स्थापना 1935 में की गयी।

केन्द्रीय बैंक की परिभाषा

अलग-अलग अर्थशास्त्रियों ने केन्द्रीय बैंक को अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है तथा केन्द्रीय बैंक द्वारा सम्पादित किये जाने वाले किसी एक अथवा कुशह कार्यों पर बल दिया है। केंट ने जहाँ केन्द्रीय बैंक को मुद्रा की पूर्ति के विस्तार तथा संकुचन के प्रबंध से संबंधित किया है, वेरा स्मिथ ने इसे पत्र मुद्रा के निर्गमन के संबंध में एकाधिकारी के रूप में देखा है, शा ने शाख नियंत्रक के रूप में परिभाषित किया है तो हाट्रे ने इसे अंतिम ऋणदाता के रूप में तथा सेयर्स ने इसे व्यापारिक बैंकों के नियंत्रक के रूप में देखा है और डी कॉक तो इसे सम्पूर्ण बैंकिंग तथा मौद्रिक व्यवस्था के शीर्ष के रूप में देखते हैं तथा इसकी परिभाषा देते हुए केन्द्रीय बैंक द्वारा सम्पादित किया जाने वाले प्रायः सभी कार्यों को गिना जाता है। इनमें कुछ प्रमुख परिभाषायें इस प्रकार हैं:

केंट के अनुसार, "केन्द्रीय बैंक वह बैंक है जो सामान्य लोक कल्याण की दृष्टि से मुद्रा के परिमाण के विस्तार तथा संकुचन के प्रबंध के दायित्व से संबंधित है।"

हाट्रे के अनुसार, "केन्द्रीय बैंक वह बैंक है जो अंतिम ऋणदाता के रूप में कार्य करता है।"

डी कॉक के अनुसार, "केन्द्रीय बैंक वह बैंक है जिसे अपने देश के बैंकिंग तथा मौद्रिक ढाँचे में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और जहाँ तक संभव हो सके राष्ट्रीय आर्थिक दृष्टि से केन्द्रीय बैंक के कार्य सम्पादित करता है।"
सेयर्स के अनुसार, "केन्द्रीय बैंकों का कार्य व्यापारिक बैंकों से भिन्न होता है, यह व्यापारिक बैंकों का इस प्रकार से नियमन करता है जिससे राज्य की सामान्य मौद्रिक नीति क्रियाशील हो सके।
ऊपर दी गयी परिभाषाओं में भिन्नता अवश्य है पर इन परिभाषाओं को सम्मिलित रूप में लेने पर एक बात रूप से सामने आती है कि केन्द्रीय बैंक एक विशिष्ट प्रकार का बैंक है जो सामान्य बैंकों से भिन्न है, जिसे देश की सम्पूर्ण मौद्रिक एवं बैंकिंग व्यवस्था में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, मुद्रा बाजार का यह अगुआ है तथा देश की सम्पूर्ण व्यापारिक बैंकिंग व्यवस्था तथा वित्तीय संस्थाओं का देश के आर्थिक हित में नियमन करता है डी कॉक के अनुसार केन्द्रीय बैंक केवल लोक हित और सम्पूर्ण देश के कल्याण के लिए ही कार्य करता है, लाभ को प्राथमिक उद्देश्य नहीं स्वीकार करता है। यह एक ओर सरकार का बैंक है तो दूसरी ओर बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करता है।

केन्द्रीय बैंकिंग के सिद्धांत

केन्द्रीय बैंक की कार्यप्रणाली अन्य व्यापारिक अथवा किसी भी बैंक से भिन्न होती है। इसकी कार्य प्रणाली निम्न सिद्धांतों पर आधारित है:

1. मौद्रिक एवं वित्तीय स्थिरता – मौद्रिक स्थिरता किसी भी देश के केन्द्रीय बैंक का प्रथम उद्देश्य होता है। मौद्रिक स्थिरता होने पर ही देश में आर्थिक स्थिरता संभव है। यदि मौद्रिक गति उपयुक्त तरीके से विभिन्न सावधानियों को ध्यान में रखते हुए अपनायी जाए तो आर्थिक विकास, रोजगार मूल्यों में स्थिरता, सामाजिक कल्याण, आदि सभी बहुत सीमा तक प्राप्त किया जा सकता है। मौद्रिक नियंत्रण में कमी अर्थव्यवस्था में कई प्रकार की गड़बड़ी पैदा करती है। अतः केन्द्रीय बैंक के लिए राष्ट्र में मौद्रिक एवं वित्तीय स्थिरता बनाये रखना अति आवश्यक है।
2. राष्ट्रीय कल्याण – केन्द्रीय बैंक के सभी प्रकार के कार्य कलापों में राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता दी जाती है। केन्द्रीय बैंक अपने छोटे मोटे अन्य उद्देश्यों की उपेक्षा करके भी इस सिद्धांत की रक्षा करता है। क्योंकि केन्द्रीय बैंक की स्थापना ही देश की मौद्रिक व्यवस्था के सुदृढ़ बनाने के लिए की गयी है। अतः यदि केन्द्रीय बैंक अन्य छोटे-मोटे उद्देश्यों की उपेक्षा भी करता है तो भी वह अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय लाभ में ही ऐसा करता है, क्योंकि वह राष्ट्रीय हित की रक्षा करता है। इस प्रकार अन्य बैंकों का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है जबकि केन्द्रीय बैंक के लिए लाभ कमाना गौण है। देश की मौद्रिक व्यवस्था उपयुक्त रहे यही केन्द्रीय बैंक का लाभ है।
3. राजनैतिक प्रभाव से स्वतंत्रता – केंद्रीय बैंक राष्ट्रीय हित में पूर्ण रूपेण तभी कार्य कर पायेगा, जब उस पर राजनैतिक प्रभाव न हो। राजनैतिक दबाव की दशा में केंद्रीय बैंक स्वतंत्र निर्णय लेने में

असमर्थ होगा। इसी कारण केंद्रीय बैंक को स्वायत्त संस्था के रूप में स्थापित किया गया है परन्तु इसके संचालक मंडल की नियुक्ति का अधिकार केंद्रीय सरकार के ही हाथ में है। कुल मिलाकर केंद्रीय बैंक आवश्यकता पड़ने पर स्वतंत्र निर्णय भी ले सकता है।

4. साख निर्माण का सिरमौर – व्यावसायिक बैंक आवश्यकता पड़ने पर केंद्रीय बैंक से ऋण प्राप्त कर सकते हैं। सरकार की ऋण आवश्यकता भी केंद्रीय बैंक द्वारा ही पूरी की जाती है। व्यापारिक बैंकों द्वारा साख निर्माण की मात्र में केंद्रीय बैंक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बैंक दर एवं नकद कोष जैसे महत्वपूर्ण घटकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन करके केंद्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के साख निर्माण की मात्र में कमी अथवा वृद्धि कर सकता है।
5. विशेषाधिकार – केंद्रीय बैंकों को अपने कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए कुछ विशेष अधिकार प्राप्त है जो अन्य बैंकों को नहीं प्राप्त है। उदाहरण के लिए नोट निर्गमन का अधिकार, सरकार का बैंकर, बैंकों का बैंक, इत्यादि। इन कार्यों को करने का अधिकार केवल केंद्रीय बैंक को ही प्राप्त है।
6. लोकहित की प्रमुखता का सिद्धांत – डी कॉक के अनुसार केंद्रीय बैंक का निदेशक सिद्धांत यह है कि उसे केवल लोकहित और सम्पूर्ण देश की भलाई के लिए कार्य करना च्चिये तथा वह लाभ को प्राथमिक उद्देश्य न बनाये। वह सेवा के साथ लाभार्जन करें, अर्थात उसका प्रमुख उद्देश्य लोकहित की सिद्धि हो, लाभ की प्राप्ति तो गौण उद्देश्य होना चाहिए।

केंद्रीय बैंक के कार्य

देश का अकेला बैंक होने के कारण केंद्रीय बैंक को मुद्रा एवं साख की पूर्ति से संबंधित बहुत सरे दायित्वों का निर्वहन करना पड़ता है। संक्षेप में केंद्रीय बैंक के निम्न कार्य हैं:

1. पत्र मुद्रा का निर्गमन – प्रायः प्रत्येक देश में पत्र मुद्रा के निर्गमन के संबंध में केंद्रीय बैंक को एकाधिकार की स्थिति प्राप्त रहती है। डी कॉक तो इसे निर्गमन का बैंक कहते हैं और यह मत व्यक्त करते हैं कि प्रायः प्रत्येक देश में नोट निर्गमन का अधिकार केंद्रीय बैंक के प्रारंभ तथा विकास के साथ जुड़ा हुआ है। व्यापारिक बैंकों को नोट निर्गमन का अधिकार नहीं होता है। डी कॉक के अनुसार केवल केंद्रीय बैंक द्वारा नोट निर्गमन के निम्नलिखित लाभ हैं:
    i. इसके कारण नोट के चलन में एक रूपता बनी रहती है तथा इसका नियमन भी अपेक्षाकृत उत्तम रहता है।
    ii. पत्र मुद्रा में जनता का विश्वास बना रहता है।

iii. देश की मुद्रा संबंध की आवश्यकता का ज्ञान देश के केंद्रीय बैंक को रहता है जिसको ध्यान में रखकर केंद्रीय बैंक पत्र मुद्रा निर्गमित करता है इसलिए मुद्रा प्रणाली में लोच बनी रहती है ।

iv. देश में आर्थिक स्थिरता बनाये रखने का दायित्व देश के केंद्रीय बैंक पर रहता है इसलिए यह आवश्यक है कि पत्र मुद्रा के निर्गमन का अधिकार केंद्रीय बैंक के ही हाथ में हो।

v. इसके कारण परोक्ष रूप से साख नियंत्रण में मदद मिलती है क्योंकि व्यापारिक बैंकों द्वारा साख सृजन का आधार मुद्रा की पूर्ति ही होती है।

2. सरकार के बैंक के रूप में – केंद्रीय बैंक अपने देश की सरकार के लिए बैंक, एजेंट तथा परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है। सरकार के बैंक के रूप में केंद्रीय बैंक वाही कार्य करता है जो व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों के लिए करता है। सरकारी विभागों, उद्यमों तथा बोर्डों के खाते केंद्रीय बैंक में होते हैं। इन सबकी सम्पूर्ण आय इसी में जमा होती है तथा व्यय के लिए निकासी भी इसी में से होती है । केंद्रीय बैंक सरकारी जमा पर ब्याज नहीं देता है । आवश्यकता पड़ने पर सरकार को अल्पकालीन ऋण तथा अधिविकर्ष की भी सुविधा देता है। वह सरकार के चेकों तथा ड्राफ्टों की वसूली करता है।

केंद्रीय बैंक सरकार के एजेंट के रूप में भी कार्य करता है। वह सरकार के एजेंट के रूप में ट्रेजरी बिल्स, सार्वजानिक ऋण या प्रतिभूतियों को निर्गमित करता है तथा उनका धन प्राप्त करता है। वह सरकारी प्रतिभूतियों का अभिगोपन भी करता है। इतना ही नहीं केंद्रीय बैंक सरकार के वित्तीय एजेंट के रूप में कार्य करता है, कर तथा अन्य प्राप्तियों का भुगतान करता है। वह सरकार के लिए विदेशी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय भी करता है। वह अंतरराष्ट्रीय वित्तीय मामलों में सरकार के एजेंट के रूप में कार्य करता है।

केंद्रीय बैंक सरकार के परामर्शदाता के रूप में भी कार्य करता है। वह आर्थिक नीतियों जैसे आर्थिक नियोजन, मौद्रिक नीति, औद्योगिक नीति, व्यापारिक नीति, घटे की वित्त व्यवस्था, मुद्रा के अवमूल्यन तथा अधिमूल्यन, विदेशी विनिमय नीति आदि के संबंध में सरकार को मूल्यवान परामर्श देता है।

3. बैंकों के बैंक के रूप में – सम्पूर्ण बैंकिंग व्यवस्था में केंद्रीय बैंक को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। अतएव अन्य सभी बैंक इससे सम्बद्ध होते हैं। केंद्रीय बैंक तीन रूपों में बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करता है ।

i. केंद्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के नकद कोष के अधिरक्षक के रूप में कार्य करता है। व्यापारिक बैंक अपने नकद कोष को केंद्रीय बैंक के पास रखते हैं क्योंकि इससे बैंक में जनता का

विश्वास बढ़ता है। अनेक देशों में यह वैधानिक व्यवस्था है कि व्यापारिक बैंकों को अपने जमा का एक निश्चित भाग केंद्रीय बैंक में नकद कोष के रूप में रखना होगा।

ii. केंद्रीय बैंक अंतिम ऋणदाता के रूप में कार्य करता है। वह अल्पकालीन स्थितियों में व्यापारिक बैंकों के बिलों की पुनर्कटौती करके उन्हें तरल कोष उपलब्ध कराता है। इस प्रकार जब व्यापारिक बैंक तरलता के संबंध में अपने को असहाय पाते हैं, केंद्रीय बैंक उनकी अंतिम सहायता के लिए सामने आटा है। डी कॉक के अनुसार केंद्रीय बैंक द्वारा बिलों की पुनर्कटौती के कारण सम्पूर्ण साख व्यवस्थ की लोच तथा तरलता बढ़ जाती है तथा हाट्रे इस पर प्रकाश डालते हुए यह कहते हैं कि अंतिम ऋणदाता के रूप में केंद्रीय बैंक नकदी की कमी को पूरा करता है।

iii. केंद्रीय बैंक समाशोधन गृह के रूप में कार्य करता है – चूंकि सभी व्यापारिक बैंक उससे सम्बद्ध होते हैं तथा सभी के खाते केंद्रीय बैंक के पास रहते हैं, केंद्रीय बैंक सदस्य देशों के पारस्परिक दायित्वों देने तथा पावने को निपटाने के संबंध में समाशोधक का कार्य करता है। केंद्रीय बैंक की इस भूमिका के कारण बैंकों के पारस्परिक हिसाब किताब आसानी से कम समय में सुलझ जाते हैं। केवल समायोजन की प्रविष्टियाँ होती है, नकद लेन-दें होती ही नहीं। बैंकों के रूप में केंद्रीय बैंक की यह भूमिका अत्यंत ही उपयोगी है।

4. केंद्रीय बैंक राष्ट्र की स्वर्ण निधि तथा विदेशी विनिमय कोषों के अभिरक्षक के रूप में कार्य करता है। केंद्रीय बैंक विदेशी विनिमय कोष अपने पास रखता है तथा विदेशी विनिमय दर में स्थिरता लाने का प्रयास करता है। वह विदेशी मुद्राओं का क्रय विक्रय करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर विदेशी विनिमय के प्रयोग तथा क्रय विक्रय पर नियंत्रण भी लगा देता है।
5. केंद्रीय बैंक आर्थिक तथ्यों तथा आंकड़ों को संकलित करता है तथा उन्हें प्रकाशित करता है।
6. केंद्रीय बैंक देश के आर्थिक विकास में सहायक होता है आज कल देश का केंद्रीय बैंक आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्थिरता के साथ आर्थिक विकास में तो उसका स्थान अपरिहार्य है। केंद्रीय बैंक कृषि तथा औद्योगिक विकास के लिए वांछित वित्तीय व्यवस्था करता है। इस दिशा में उसका प्रमुख योगदान पूँजी तथा मुद्रा बाजार विकसित करना है। वह देश में वित्तीय अधोसंरचना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पूर्णतया विकसित पूँजी तथा मुद्रा बाजार के कारण पूँजी निर्माण की दर बढ़ जाती है तथा अर्थव्यवस्था में पड़ी निष्क्रिय तथा सुषुप्त बचत उचित स्त्रोतों में पहुँच जाती है।
7. साख नियंत्रण – आजकल साख नियंत्रण केंद्रीय बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य मन जाता है क्योंकि एक सुरक्षित सीमा के बाद साख सृजन अर्थव्यवस्था में आर्थिक अस्थिरता ला देती है।

8. प्रकाशन – अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे कि मुद्रा, बैंकिंग, जनकल्याण, विदेशी विनिमय, उद्योग व्यापार, उत्पादन, आदि से संबंधित महत्वपूर्ण आकड़ें एकत्र कर्ण एवं उन्हें प्रकाशित करना भी आज के केंद्रीय बैंक का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

साख पत्रों के प्रकार

प्रमुख साख पत्र निम्नलिखित हैं:

(1) चैक

साख पत्रों का सर्वाधिक प्रचलित रूप चैक है। भारतीय विनिमय साध्य विपत्र अधिनियम के अनुसार, चैक बैंक में जमा करने वाले व्यक्ति को अपने बैंक के लिए लिखित आदेश है जिससे वह बैंक को यह आदेश देता है कि चैक में अंकित रकम उसमें लिखित व्यक्ति या उससे आदेश प्राप्त व्यक्ति या उसके धारक को माँग पर प्रदान करें। इस प्रकार चैक में तीन पक्ष होते हैं प्रथम, चैक को लिखने वाला आहार्ता, द्वितीय वह बैंक जिसके नाम चैक लिखा जाता है अथवा जिसे भुगतान का आदेश दिया जाता है यानि आहार्यी, तृतीया जिसे भुगतान दिलाना होता है, अर्थात् आदाता। (यदि चैक दिलाने वाला रकम का भुगतान स्वयं अपने लिए चाहता है तो आहार्ता तथा आदाता एक ही व्यक्ति होता है।)

चैक के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं–(1) चैक एक लिखित आदेश होता है। (2) चैक का भुगतान बिना किसी शर्त के होता है। (3) चैक सदा उस बैंक के नाम लिखा जाता है जिसमें लिखने वाले का खाता होता है। (4) भुगतान की रकम स्पष्ट रूप से अंकों व अक्षरों में लिखी होती है। (5) चैक पर आहार्ता के हस्ताक्षर होना आवश्यक है और यह हस्ताक्षर वैसे ही हो जैसे कि वह नमूने के तौर पर बैंक मे दे चुका है। (6) चैक का भुगतान माँगने पर तुरंत कर दिया जाता है। (7) चैक का भुगतान इस पर निर्देशित व्यक्ति अथवा उसके आदेश प्राप्त व्यक्ति अथवा चैक के वाहक को किया जाता है। चैक कई प्रकार के होते है जैसे

(क) बेयरर या वाहक चैकः–यह वह चैक है जिसका भुगतान निर्देशित व्यक्ति को अथवा किसी भी व्यक्ति को जो बैंक को प्रस्तुत करे दिया जा सकता है। इस प्रकार चैक का हस्तांतरण करने के लिए चैक पर किसी प्रकार बेचान अथवा आदाता के हस्ताक्षरों की आवश्यकता नहीं होती, यद्यपि बैंक कभी–कभी सुरक्षा के दृष्टिकोण से हस्ताक्षर ले लेता है। इस प्रकार यह चैक पूर्णतया हस्तान्तरणीय होता है।

(ख) ऑर्डर या आदेशित चैकः–इस प्रकार के चैक का भुगतान केवल उस व्यक्ति को किया जाता है जिसका नाम चैक पर लिखा होता है। यदि वह व्यक्ति इसका हस्तान्तरण किसी अन्य व्यक्ति को करता है उस चैक की पीठ पर दूसरे व्यक्ति का नाम तथा उसे भुगतान का आदेश लिखकर अपने हस्ताक्षर करने होगें। चैक पर छपा हुआ बेयरर शब्द काट देने से चैक को आसानी से ऑर्डर चैक में बदला जा सकता है।

(ग) रेखांकित चैकः—इस प्रकार के चैक का भुगतान किसी भी व्यक्ति को नकद मुद्रा में प्राप्त नहीं होता है। इसकी रकम उस व्यक्ति अथवा उसमें आदेश प्राप्त व्यक्ति के खाते में जमा की जाती है। ऐसे चैक के बायीं ओर ऊपरी भाग में दो आड़ी रेखाएं खींचकर शब्द लिखे जाते हैं।

रेखांकित चैक भी तीन प्रकार के होते है

(क) साधारण रेखांकित चैकः—चैक की बायीं ओर के कोने में दो आड़ी रेखाओं के बीच एंड कंपनी अथवा नॉट निगोशिएबल शब्द लिख दिए जाने का यह अर्थ नहीं होता कि चैक को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है। इसका आशय केवल यह है कि हस्तांतरणकर्ता केवल उसी प्रकार के अधिकार का हस्तांतरण कर सकता है जैसा कि उसे स्वयं प्राप्त है।

(ख) विशेष रेखांकित चैकः—इसमें रेखांकन के साथ—साथ भुगतान लेने वाले बैंक का नाम भी लिख दिया जाता है।

(ग) एकाउण्ट पेयी चैकः—इस चैक की दोनों रेखाओं के बीच एकाउण्ट पेयी लिखा होता है जिससे चैक की रकम केवल आदाता के ही खाते में जमा की जाती है बैंक किसी अन्य किसी व्यक्ति को इसका हस्तांतरण नहीं कर सकता। यदि आदाता का बैंक में खाता नहीं है तो उसे चैक का भुगतान लेने के लिए उस बैंक में खाता खोलना पड़ेगा।

(2) विनिमय बिल

भारतीय विनिमय साध्य विपत्र अधिनियम के अनुसार,''विनिमय बिल एक ऐसा पत्र है जो इसके लिखने वाले के द्वारा हस्तांतरित होता है, जिसमें किसी व्यक्ति को एक शर्तरहित आदेश होता है कि निश्चित रकम किसी व्यक्ति को उसके आदेशानुसार अथवा पत्र के वाहक को दी जाय।''

विनिमय बिल के भी तीन पक्ष होते हैं—(1) **आहार्ता,** जो बिल को लिखता है, वह प्रायः लेनदान होता है, **(2) आहार्यी**—वह व्यक्ति जिस पर बिल लिखा जाता है और जो इसे स्वीकार करता है वह प्रायः ऋणी अथवा देनदार होता है तथा **(3) आदाता,** जिसे बिल की रकम का भुगतान प्राप्त होता है आहार्ता तथा आदाता दोनों एक ही हो सकते है अथवा अलग—अलग भी।

विनिमय बिल के मुख्य लक्षण ये होते है

1. यह लिखित आदेश होता है।
2. यह एक बिना शर्त आज्ञापत्र होता है।
3. साधारणतः यह ऋणदाता द्वारा ऋणी पर लिखा जाता है।
4. इस पर ऋणदाता अथवा आहार्ता के हस्ताक्षर होते है।
5. इस पर ऋणी अथवा आहार्यी की स्वीकृति तथा हस्ताक्षर अवश्य होने चाहिए।
6. बिल का भुगतान माँगने पर अथवा निश्चित अवधि की समाप्ति पर किया जाता है।
7. विनिमय बिल मे लिखी गई रकम निश्चित होती है।
8. बिल का भुगतान किसी विशेष व्यक्ति अथवा उससे आदेश प्राप्त व्यक्ति अथवा वाहक को ही किया जाता है।

विनिमय बिल के प्रकार–भुगतान की अवधि के आधार पर बिल दो प्रकार के होते हैं
(1) दर्शनी बिल, जिसका भुगतान माँग पर अथवा बिल को प्रस्तुत करने पर करना पड़ता है। **(2) मुद्दती बिल,** जिसका भुगतान बिल में लिखी हुई अवधि के बाद ही किया जाता है। मुद्दती बिल में लिखित समय की अवधि में तीन अनुग्रह दिवस भी रियायत के रूप में दिए जाते हैं। मुद्दती बिलों पर मूल्यानुसार टिकट लगाना अनिवार्य होता है, किंतु दर्शनी बिल पर स्टाम्प लगाना आवश्यक नहीं होता।

स्थान के विचार से भी विनिमय बिल दो प्रकार के होते है–**(1) देशी बिल,** जिसे लिखने वाला और स्वीकार करने वाला दोनों एक ही देश के रहने वाले होते हैं। **(2) विदेशी बिल,** जिसे एक देश में रहने वाला व्यक्ति लिखता है और दूसरे देश में रहने वाला स्वीकार करता है। विदेशी बिल प्रायः तीन प्रतियों में लिखे जाते है और तीनों को अलग–अलग डाक से स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। जो प्रति सबसे पहले पहुँचती है उस पर स्वीकृति दे दी जाती है। विदेशी बिल पर दो बार स्टाम्प लगाने पड़ते है, लिखने वाले के देश में तथा स्वीकारकर्ता के देश में।

बिल के उद्देश्य के विचार से भी विनिमय बिल दो प्रकार के होते है।

(1) व्यापारिक बिल, जिसका उद्देश्य व्यापार के लिए रकम या सामान उधार लेना देना होता है तथा, (2) अनुग्रह बिल, जो आपसी सहायता के लिए लिखे जाते हैं।

विनिमय बिलों के लाभ–विनिमय बिलों के प्रयोग से लेनदार तथा देनदार दोनों को लाभ होता है–

1. व्यापारियों को बिल की अवधि तक माल उधार मिल जाता है, इस बीच में वे माल बेचकर भुगतान के लिए धन प्राप्त कर लेते हैं।
2. लेनदार को यह लाभ होता है कि यदि बिल की अवधि के समाप्त होने के पूर्व ही उसे धन की आवश्यकता होती है तो वह बैंक से भुना सकता है, बैंक बाकी बचे समय का ब्याज काटकर नकद रकम दे देता है।
3. भुगतान की तिथि निश्चित होने के कारण भुगतान का प्रबंध पहले से ही किया जा सकता है।
4. बिल द्वारा ऋणी अपनी स्वीकृति देकर ऋण का लिखित प्रमाण देता है।
5. अनुग्रह बिलों द्वारा व्यापारी आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करते है।
6. ऋण को हस्तांतरित करने का यह एक सरल उपाय है।

विनिमय बिल तथा चैक में तुलना– दोनों में अनेक समानताएँ है जैसे–(1) दोनों में तीन पक्ष होते हैं–आहार्ता, आहार्यी तथा आदाता। (2) दोनों बिना शर्त आदेश है, (3) दोनों पर आहार्ता के हस्ताक्षर होते है। (4) दोनों विनिमय साध्य है, (5) दोनों पर बेचान किया जा सकता है, (6) दोनों की रकम वाहक को या आदेशानुसार अन्य व्यक्ति को दी जाती है।

दोनों में असमानताएँ ये हैं–(1) बिल पर देनदार की स्वीकृति होती है जो कि चैक पर नहीं होती। (2) बिल को रेखांकित नहीं किया जाता, जबकि चैक रेखांकित हो सकता है। (3) बिल में किसी व्यक्ति अथवा फर्म को भुगतान का आदेश होता है, जबकि चैक में यह आदेश

बैंक के लिए होता है। (4) बिल का भुगतान निश्चित तिथि को होता है, जबकि चैक का भुगतान तुरंत किया जाता है। (5) बिल के अप्रतिष्ठित होने की सूचना सभी संबंधित पक्षों को देना आवश्यक है, जबकि चैक की अप्रतिष्ठा की सूचना नहीं दी जाती है। (6) बिलों पर स्टाम्प लगाना होता है परंतु चैक पर कोई स्टाम्प नहीं होता तथा (7) विदेशी बिल तीन प्रतियों में लिखे जाते है परंतु चैक सदा एक ही लिखा जाता है।

(3) प्रतिज्ञा पत्र

भारतीय विनिमय साध्य विपत्र अधिनियम के अनुसार, ''प्रतिज्ञा पत्र एक लिखित पत्र होता है जिसमें इसके लिखने वाला इसमें अंकित रकम इसमें लिखे हुए व्यक्ति या पक्ष को या उसके आदेशानुसार या उसके वाहक को बिना शर्त देने की प्रतिज्ञा करता है।'' इस प्रकार प्रतिज्ञा पत्र अथवा प्रोनोट में केवल दो पक्ष होते है–एक लिखने वाला, जो प्रायः ऋणी होता है तथा दूसरा प्राप्तकर्ता जो लेनदार होता है। प्रतिज्ञा पत्र पर उसकी रकम के अनुसार रेवेन्यु स्टाम्प लगा होता है।

प्रतिज्ञा पत्र तथा विनिमय पत्र में मुख्य अंतर ये हैं–(1) प्रतिज्ञा पत्र में दो पक्ष होते है जबकि विनिमय पत्र में तीन पक्ष होते है। (2) प्रतिज्ञा पत्र को देनदार लिखता है जबकि विनिमय बिल लेनदार द्वारा लिखा जाता है। (3) प्रतिज्ञा पत्र पर स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती जबकि बिल पर स्वीकृति होना आवश्यक होता है। (4) प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान करने की प्रतिज्ञा होती है जबकि बिल में भुगतान का आदेश होता है। (5) प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान की जिम्मेदारी लिखने वाले की होती है, बिल में स्वीकार करने वाला भुगतान का जिम्मेदार होता है। (6) प्रतिज्ञा पत्रों को व्यक्तिगत तथा व्यापारिक दोनों प्रकार के लेन–देन के लिए प्रयोग किया जाता है जबकि विनिमय बिलों का प्रयोग केवल व्यापारिक कार्यो के लिए ही होता है।

प्रतिज्ञा पत्र तथा चैक में अंतर ये हैं–(1)प्रतिज्ञा पत्र में दो पक्ष होते है, जबकि चैक में तीन पक्ष होते हैं। (2) प्रतिज्ञा पत्र स्वयं पर लिखा जाता है, चैक किसी बैंक पर लिखा जाता है। (3) प्रतिज्ञा पत्र एक प्रतिज्ञा है चैक एक आदेश है। (4) प्रतिज्ञा पत्र का भुगतान माँग या कुछ समय बाद किया जाता है, चैक का भुगतान माँग पर होता है (5) प्रतिज्ञा पत्र ऋणी द्वारा लिखा जाता है चैक लिखने वाले व्यक्ति की रकम बैंक में जमा होती हैं (6) प्रतिज्ञा पत्र पर स्टाम्प लगता है चैक पर स्टाम्प नहीं लगाना पडता।

(4) हुण्डी

हुण्डी एक भारतीय साख पत्र है जिसका चलन देश में लगभग दसवीं शताब्दी से होता आया है। यह विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न भाषाओं में तथा विभिन्न रीतियों में लिखी जाती है तथा इसका रूप सुनिश्चित नहीं होता। हुण्डी भारतीय साध्य विपत्र अधिनियम के अंतर्गत नहीं आती। विनिमय बिल के समान हुण्डी पर भी स्टाम्प होता है।

समय की दृष्टि से हुण्डी दो प्रकार की होती है–**(1) दर्शनी हुण्डी,** जिसका माँगने पर तुरंत भुगतान कर दिया जाय, इस पर स्टाम्प की आवश्यकता नहीं होती तथा **(2) मुद्दती हुण्डी,** जिसका भुगतान एक निश्चित मुद्दत अथवा अवधि के बाद किया जाता है इसमें भुगतान की तिथि लिख दी जाती है परंतु इसमें रियायती दिन देने की प्रथा है।

भुगतान पाने वाले की दृष्टि से हुण्डी चार प्रकार की होती है–(1) **देखनहार हुण्डी,** जिसका भुगतान वाहक को कर दिया जाता है तथा हस्तांतरण के लिए बेचान की आवश्यकता नहीं होती। (2) **धनी जोग हुण्डी,** जिसका भुगतान हुण्डी में लिखित व्यक्ति अथवा धनी को या उसके आदेशानुसार अन्य व्यक्ति को किया जाता है और जिसके हस्तांतरण के लिए इसकी पीठ पर बेचान करना आवश्यक होता है, (3) **नाम जोग हुण्डी,** जिसका भुगतान केवल हुण्डी में लिखित व्यक्ति को ही किया जाता है तथा (4) **शाह जोग हुण्डी,** जिसका भुगतान किसी प्रतिष्ठित व्यापारी को ही किया जाता है।

(5) बैंक ड्राफ्ट

बैंक ड्राफ्ट ऐसा साख पत्र है जिसके द्वारा एक बैंक अपनी किसी शाखा अथवा किसी अन्य बैंक को लिखित आदेश देता है कि ड्राफ्ट में लिखी हुई रकम लिखित व्यक्ति को या उससे आदेश प्राप्त व्यक्ति को दे दी जाय। बैंक ड्राफ्ट में विनिमय बिल तथा चैक दोनों के गुण पाए जाते हैं। बैंक ड्राफ्ट द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को रकम भेजने के लिए बैंक में रकम जमा करा दी जाती है। ड्राफ्ट बनाने के लिए बैंक कमीशन वसूल करता है। बैंक द्वारा ड्राफ्ट रकम देने वाले को दिया जाता है जो कि डाक द्वारा इसे उस व्यक्ति को भेज देता हैं। जिसकों भुगतान प्राप्त करना होता है और वह चैक के समान ही ड्राफ्ट बैंक में प्रस्तुत करके रकम वसूल कर लेता है।

(6) साख प्रमाण पत्र

साख प्रमाण पत्र किसी व्यक्ति फर्म अथवा बैंक द्वारा किसी अन्य व्यक्ति, फर्म अथवा बैंक पर लिखा गया साख पत्र होता है जो यह प्रार्थना करता है कि वह पत्र में अंकित व्यक्ति को एक निश्चित रकम का भुगतान कर दे। इसमें एक तिथि लिख दी जाती है और रकम उसी तिथि तक प्रदान की जाती है। ये प्रमाण पत्र दो प्रकार के होते हैः (1) **साधारण साख प्रमाण पत्र,** जो किसी एक बैंक या एक व्यक्ति के नाम ही लिखा जाता है, (2) **चलायमान साख प्रमाण पत्र,** जो एक ही साथ बैंक की विभिन्न शाखाओं तथा संबंधित बैंकों को लिखा जाता है। विभिन्न स्थानों पर लिए गए ऋण की रकम प्रमाण पत्र की पीठ पर लिख दी जाती है।

विदेशी व्यापार में साख प्रमाण पत्रों का काफी अधिक प्रयोग किया जाता है। आयातकर्ता की ओर से उसका बैंक दूसरे निर्यातकर्ता को उस देश में किसी बैंक के माध्यम से निश्चित शर्ते पूरी करने पर विशिष्ट भुगतान करने का आश्वासन देता है।

(7) बुक क्रेडिट

बुक क्रेडिट अथवा किताबी साख वह है जिसमें जब कोई व्यापारी अपना माल उधार बेचता है या कोई बैंक ऋण देता है तो दी गयी रकम को खाते में लिख लिया जाता है। साख के लिए अलग से कोई पत्र अथवा रूक्का नहीं लिखा जाता, खाते मे लिखे हुए साख के विवरण को वैधानिक रूप मे भी स्वीकार कर लिया जाता है। आधुनिक युग में व्यापारी किताबी साख का बहुत अधिक प्रयोग करते हैं। प्रायः इस प्रकार के ऋणों का आपसी लेन–देन द्वारा ही समायोजन हो जाता है, इसके बाद जो कुछ बचत है उसका नकद

भुगतान कर दिया जाता है। बैंक अपने आपसी लेन–देन किताबी साख द्वारा की करते हैं और उनके खातों के समायोजन का कार्य समाशोधन गृह करते हैं।

(8) यात्री चैक

यात्री चैकों का प्रयोग यात्रियों द्वारा किया जाता है, जो उन्हें प्रस्तुत करके चैक जारी करने वाले बैंक की किसी शाखा अथवा किसी अन्य संबंधित संस्था से रकम वसूल कर सकते है। इनको एक निश्चित अवधि तक ही प्रयोग किया जा सकता है, इसके बाद रकम केवल जारी करने वाले बैंक से ही प्राप्त की जा सकती है। चैक जारी करने वाला बैंक चैक पर उस व्यक्ति के हस्ताक्षर करा लेता है जिसे भुगतान लेना होता है। यह हस्ताक्षर भुगतान करने के पहले मिला लिए जाते है। इसलिए इनके खो जाने पर भी गलत व्यक्ति को भुगतान होने की संभावना नहीं रहती।

(9) क्रेडिट कार्ड

क्रेडिट कार्ड बैंक द्वारा जारी किया गया ऐसा कार्ड है जिसका प्रयोग करके कार्ड का धारक विभिन्न प्रकार की वस्तुओं तथा सेवाओं का एक निश्चित सीमा तक क्रय कर सकता है। क्रेडिट कार्ड के आधार पर की गई बिक्री का भुगतान विक्रेताओं द्वारा बैंक से प्राप्त कर लिया जाता है। कार्ड का धारक इस राशि का भुगतान बैंक को करता है। यदि भुगतान करने में निर्धारित समय से विलंब होता है तो बैंक इस पर ब्याज प्राप्त करता है। अधिकांश क्रेडिट कार्ड धारक को यह सुविधा देते है कि वह बैंक की किसी शाखा से एक निश्चित सीमा तक नकदी प्राप्त कर सकता है। भारत में पिछले कुछ वर्षो से क्रेडिट कार्ड का अधिक प्रयोग किया जाने लगा है। यहाँ तक कि, किसानों की सुविधा के लिए अलग से किसान क्रेडिट कार्ड भी जारी किए गए हैं। अनेक बैंकों द्वारा जारी किए गए एटीएम का प्रयोग डेबिट कार्ड के रूप में भी किया जा सकता है। यह क्रेडिट कार्ड से इस बात में भिन्न है कि इसका प्रयोग करने पर विक्रेता कार्ड धारक के बैंक खाते से रकम प्राप्त कर लेता है।

(10) ट्रेजरी बिल्स अथवा कोषागार विपत्र

जब सरकार को अल्पकाल के लिए ऋण की आवश्यकता होती है तो वह ट्रेजरी बिल्स जारी करती है, जिनकी अवधि प्रायः 3, 6, 9 अथवा 12 मास होती है। निश्चित अवधि के समाप्त होने पर इनका भुगतान सरकार से प्राप्त किया जाता है। इनके बेचने के लिए सरकार टेण्डर माँगती है और जिस टेण्डर में ब्याज व बट्टे की दर कम माँगी जाती है उसी को बिल बेच दिए जाते है। बट्टे की रकम ऋणदाता पहले से ही काट लेता है।

उपर्युक्त साख पत्रों के अतिरिक्त अनुग्रह बिल तथा मिश्रित पूँजी कंपनियों के ऋण पत्र तथा बॉण्ड आदि भी उल्लेखनीय हैं।

भारतीय रिज़र्व बैंक

भारत में केंद्रीय बैंक के रूप में 1 अप्रैल 1935 को भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना हुई भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना के पूर्व मुद्रा तथा साख पर नियंत्रण क्रमशः सरकार एवं इम्पीरियल बैंक का हुआ करता था। भारत में केंद्रीय बैंक की स्थापना के लिए कई आयोगों ने अपने सुझाव दिए थे। 1925 में हिल्टन यंग आयोग और 1929 में केंद्रीय बैंकिंग जाँच समिति की सिफारिशों पर 1934 में भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम पास कर 1 अप्रैल 1935 को भारतीय रिज़र्व बैंक की एक सार्वजानिक संस्था के रूप में विधिवत स्थापना की गई।

1935 में बर्मा के भारत से अलग होने पर 1942 तक यह बैंक बर्मा के केंद्रीय बैंक के रूप में कार्य करता रहा। 1947 में पाकिस्तान के भारत से अलग होने पर 30 जून 1948 तक पाकिस्तान के भी केंद्रीय बैंक के रूप में कार्य करता रहा। 1 जनवरी 1949 को इस बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। राष्ट्रीयकरण के बाद यह राज्य स्वामित्व तथा राज्य नियंत्रण में देश के केंद्रीय बैंक के रूप में कार्य कर रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय रिज़र्व बैंक को विकास संबंधी कार्य भी सौंपे गए जो वित्तीय प्रणाली के नियंत्रक के रूप में इसके कार्यों से अलग है।

भारतीय रिज़र्व बैंक के कार्य

रिज़र्व बैंक के कार्य व्यापक एवं महत्वपूर्ण है। समस्त देश की आर्थिक व्यवस्था इसी पर आश्रित है। रिज़र्व बैंक देश के अंतर्गत निम्नलिखित कार्य करता है:

1. नोट जारी करना – रिज़र्व बैंक देश के अंतर्गत नोट जारी करने वाली एक मात्र संस्था है। एक रूपये के नोट को छोड़कर समस्त मुद्रा छापने का अधिकार रिज़र्व बैंक को है। रिज़र्व बैंक मुद्रा का निर्गमन अधिकोषण सिद्धांत के आधार पर करता है। इसके अंतर्गत, बैंक फंड जमा करके कितनी ही राशि तक के नोट छाप सकता है। इन कोषों में सोने के सिक्के, सोना वोदेशी कोष एवं रूपये सम्मिलित किये जाते हैं। इन कोषों की राशि किसी भी समय 200 करोड़ से कम नहीं होनी चाहिए जिसमें 115 करोड़ रूपये का सों या सोने का सिक्का होगा। रिज़र्व बैंक के निर्गमन विभाग की कुल संपत्ति में ये कोष सम्मिलित किये जाते हैं तथा ये संपत्ति बैंक की कुल देयताओं के बराबर होती है। देयताओं में बैंक द्वारा जरी कुल बैंक नोट सम्मिलित किये जाते हैं।
2. सरकार के बैंकर के रूप में कार्य करना – रिज़र्व बैंक भारत सरकार के बैंक के रूप में कार्य करता है। यह सरकार के एजेंट के रूप में सार्वजानिक ऋण प्राप्त करने, सरकार की ओर से भुगतान करने एवं बैंकिंग संबंधी व्यवहार करने का कार्य करता है। रिज़र्व बैंक सरकार का रुपया बिना ब्याज पर अपने पास रखता है। इसके अतिरिक्त रिज़र्व बैंक सरकार के सलाहकार के रूप में सरकार को आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध करवाता है। सरकार की आर्थिक नीति को क्रियान्वित करवाने में मदद करता है।

3. बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करना – रिज़र्व बैंक समस्त बैंकों का बैंक समझा जाता है। रिज़र्व बैंक अनुसूचित बैंकों को वित्तीय सुविधाएँ उपलब्ध करवाता है। ये वित्तीय सुविधाएँ बैंकों के विभिन्न प्रकार के बिलों को पुनः भुनाकर अथवा प्रतिभूतियों की जमानत के विरुद्ध ऋण प्रदान करके उपलब्ध करवायी जाती है। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम की धरा 17.4 के अंतर्गत रिज़र्व बैंक अनुसूचित बैंकों को प्रतिभूतियाँ स्टॉक, सोना व चांदी, विनिमय विपत्र अथवा सावधि ऋण जिनकी अवधि 90 दिन से अधिक न हो प्रदान कर सकता है। इसके अतिरिक्त, रिज़र्व बैंक निर्यात बिलों के संबंध में 180 दिनों तक सावधि ऋण अथवा मांग पर दे ऋण प्रदान कर सकता है। अधिनियम की धरा 18 के अंतर्गत रिज़र्व बैंक को उन परिस्थितियों में संकटकालीन ऋण प्रदान करने का अधिकार दिया गया है। जब रिज़र्व बैंक समझता है कि ऋण व्यापार, वाणिज्य उद्योग अथवा कृषि के हित में आवश्यक है।
4. बैंकों पर नियंत्रण – रिज़र्व बैंक व्यापारिक बैंकों पर नियंत्रण करता है। यह व्यापारिक बांको को नई शाखाएं खोलने के लिए आगया प्रदान करता है। रिज़र्व बैंक को व्यापारिक बैंक के खातों का निरीक्षण करने का अधिकार है। रिज़र्व बैंक इन्हें निर्देश देने का भी कार्य संपन्न करता है। इसके अतिरिक्त रिज़र्व बैंक को व्यापारिक बैंकों के उच्च प्रबंध पर अधिकार प्राप्त होता है। चूंकि रिज़र्व बैंक की सहमती से ही प्रबंधकीय संचालकों एवं चेयरमैन को नियुक्ति का कार्य किया जाता है। रिज़र्व बैंक को यह अधिकार भी प्राप्त है कि वह शीर्ष प्रबंध में अपने संचालकों को मनोनीत कर सकता है एवं कार्यरत संचालकों को हटा सकता है।
5. साख नियंत्रण – रिज़र्व बैंक व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण की शक्ति पर नियंत्रण रखता है। बैंक ब्याज दर, खुले बाजार की क्रियाएं, वैधानिक कोष में परिवर्तन, नैतिक प्रभाव आदि विभिन्न तरीकों से रिज़र्व बैंक साख नियंत्रण करता है। साख नियंत्रण का कार्य देश की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। आवश्यकतानुसार साख निर्माण का कार्य विस्तृत अथवा संकुचित किया जाता है।
6. विदेशी कोषों का संरक्षण – रिज़र्व बैंक विदेशी विनिमय का कार्य संपन्न करता है। इसके अंतर्गत रिज़र्व बैंक विदेशी विनिमय दर निर्धारित करता है। जिसके आधार पर विदेशी मुद्रा का क्रय विक्रय किया जाता है। इसमें, रिज़र्व बैंक व्यापारिक बैंकों को निर्देश देने एवं उन पर नियंत्रण करने का कार्य भी सम्पन्न करता है। व्यापारिक बैंकों द्वारा किये गए व्यवहारों की सूची का सार-विवरण पत्र उन्हें बैंक को भेजना पड़ता है।
7. पर्यवेक्षण का कार्य – रिज़र्व बैंक व्यापारिक बैंकों एवं सहकारी बैंकों का पर्यवेक्षण करता है तथा उन्हें नई शाखाएं खोलने एवं बैंकिंग व्यापार बढ़ने के विभिन्न तरीकों के विषय में निर्देश डेटा है। रिज़र्व बैंक व्यापारिक बैंकों को बैंकिंग सुविधाएँ विस्तृत करने के लिए खोला गया है जो व्यापारिक बैंकों के कर्यों पर निगरानी रखेगा।

8. संवर्द्धन कार्य – रिज़र्व बैंक के कार्य आधुनिक युग में अत्यंत व्यापक हो गए हैं। रिज़र्व बैंक अपने संवर्द्धन कार्यों के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग विकास, नए वित्तीय संसाधनों की स्थापना एवं व्यक्तियों में बैंकिंग आदत का विकास करने का कार्य करता है। रिज़र्व बैंक ने ग्रामीण एवं औद्योगिक विकास के लिए अनेक वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक विकास बैंक, औद्योगिक पुनर्वित्त निगम, निस्खेप बीमा निगम आदि अनेक वित्तीय संस्थाओं की स्थापना करके बैंकिंग सुविधाओं के विस्तार को नई दिशा प्रदान की है। इसके अतिरिक्त रिज़र्व बैंक ने ग्रामीण वित्तीय सुविधाओं के विस्तार में प्रशंसनीय सहयोग प्रदान किया है। इसमें रिज़र्व बैंक प्रत्यक्ष रूप में वित्त सुविधायें प्रदान करता है इसके अतिरिक्त रिज़र्व बैंक ने ग्रामीण विकास के लिए दो पृथक कोषों का निर्माण किया है, प्रथम कृषि साख एवं अन्य कृषि साख कोष।

रिज़र्व बैंक की कार्यप्रणाली

भारतीय रिज़र्व बैंक का एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह देश की बैंकिंग व्यवस्था का नियमन और नियंत्रण करता है। बैंकों की नीति देश हित में रहे और वे सही दिशा में साख विस्तार करते रहे इसके लिए आवश्यक है कि उनके कार्यों पर रिज़र्व बैंक का उचित नियंत्रण रहे। रिज़र्व बैंक निम्नलिखित साधनों से भारतीय वित्तीय व्यवस्था का नियंत्रण करता है :

1. लाइसेंस – भारत में स्थापित होने वाले प्रत्येक बैंक को रिज़र्व बैंक से लाइसेंस लेना अनिवार्य है। इसके लिए रिज़र्व बैंक को प्राथना पत्र देना पड़ता है। रिज़र्व बैंक द्वारा उसी बैंक को लाइसेंस दिया जाता है जो आवश्यक शर्तों की पूर्ति करता है। यदि बैंक देशहित के विरुद्ध काम करता है तो उसका लाइसेंस रद्द भी किया जा सकता है।
2. प्रबंध – भारत में कोई भी व्यक्ति एक से अधिक बैंक में निदेशक नियुक्त नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति किसी बैंक के 1 प्रतिशत से अधिक मतों का अधिकारी नहीं हो सकता है। रिज़र्व बैंक इस बात का ध्यान रखता है कि कोई बैंक इन दोनों बातों के विपरीत काम नहीं करे।
3. पूँजी – भारत में बैंकों के अनुचित विस्तार को रोकने के लिए इनकी पूँजी व्यवस्था इस प्रकार की बनाई गई है कि केवल बड़े-बड़े बैंक ही देश के अधिकांश भागों में अपनी शाखाओं का विस्तार कर सकें और छोटे बैंक अपने व्यवसाय को एक राज्य में सीमित कर उस क्षेत्र की जनता के अधिकाधिक लाभ पहुँचा सकें। बैंकिंग अधिनियम की धरा 12 में यह व्यवस्था की गई है कि किसी बैंक की प्रर्थिक पूँजी अधिकृत पूँजी की 50 प्रतिशत और प्रदत्त पूँजी प्रर्थिक पूँजी की 60 प्रतिशत से कम नहीं हो सकती।
4. तरल कोष – भारत के सभी बैंकों के लिए यह आवश्यक है कि वे पर्याप्त मात्र में नकद या तरल राशि रखें ताकि जमाकर्ताओं को तत्काल भुगतान कर सकें। इस संबंध में बैंकिंग अधिनियम की धरा 24

में यह व्यवस्था की गयी है कि सभी भारतीय बैंक अपने कुल दायित्व का 25 प्रतिशत नकद एवं अनुमोदित प्रतिभूतियों के कोष के रूप में रखेंगे।

5. शाखा विस्तार – भारतीय रिज़र्व बैंक को बैंकों की शाखा विस्तार पर भी नियंत्रण करना पड़ता है। कोई बैंक रिज़र्व बैंक की अनुमति के बिना न तो नई शाखा खोल सकता है और न पुरानी शाखा का स्थान ही बदल सकता है।
6. निरीक्षण – रिज़र्व बैंक को यह अधिकार दिया गया है कि वह भारत के किसी भी बैंक का किसी भी समय निरीक्षण कर सकता है। इस निरीक्षण में रिज़र्व बैंक के अधिकारी यह जाँच करते हैं कि बैंक उधार देने, विनियोग करने तथा जमानत रखने, आदि में सरकारी नीति की अवहेलना तो नहीं कर रहे हैं। इस प्रकार नियमित निरीक्षण द्वारा रिज़र्व बैंक भारतीय बैंकों की क्रियाओं तथा नीतियों पर पूरा नियंत्रण रखता है।
7. दुर्बल बैंकों का समामेलन – जिन बैंकों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है उन्हें रिज़र्व बैंक दुसरे बैंकों के साथ मिल जाने का आदेश दे सकता है। इस आदेश का दोनों बैंकों द्वारा पालन किया जाना आवश्यक है।
8. अवसायन – जिन बैंकों की आर्थिक स्थिति बहुत ख़राब हो और उसमें सुधर की कोई सम्भावना न हो उन बैंकों को बनाये रखना ग्राहकों के हित में नहीं होता, क्योंकि अंत में उन बैंकों के बंद हो जाने से ग्राहकों की साडी रकम डूबने का भय रहता है। रिज़र्व बैंक को यह अधिकार है कि ऐसे बैंकों को बंद करने के लिए वह उचित कदम उठाये।
9. अंतिम लेखे एवं अंकों की समयानुकूल रिपोर्ट – भारत के प्रत्येक बैंक को अंतिम लेखे छः माहि अवधि के 30 सितंबर एवं 31 मार्च को तैयार करने पड़ते हैं और इनकी तीन प्रतियाँ 31 मार्च तक रिज़र्व बैंक को भेजनी पड़ती है। इससे रिज़र्व बैंक को देश की पूरी बैंकिंग व्यवस्था की सही जानकारी रहती है।
10. ऋण नीति निर्धारित करना – अनुसूचित व्यापारिक बैंक की ऋण नीति रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित होती है तथा इस नीति में परिवर्तन का आदेश भी रिज़र्व बैंक द्वारा दिया जाता है। इसी संबंध में चयनित साख नियंत्रण का आदेश भी रिज़र्व बैंक द्वारा दिया जाता है।

3.4 भारत में वाणिज्यिक बैंकिंग

संगठित क्षेत्र की बैंकिंग संस्थाओं में सबसे पुरानी संस्था वाणिज्यिक बैंकों की है जिनकी शाखाओं का जाल देश भर में बड़े व्यापक रूप में बिछा हुआ है तथा उसे जनता का सबसे अधिक विश्वास प्राप्त है और उसका कुल बैंकिंग कामकाज में सबसे बड़ा हिस्सा है । आरंभ में ये बैंक निगमित निकायों के रूप में गठित किये गए थे जिनमें नीजी व्यक्ति ही अंशधारी थे, लेकिन बाद में वे राज्य स्वामित्व तथा नियंत्रण के अधीन ले आए गए। अब भारत में 27 बैंकों का एक सशक्त सार्वजनिक क्षेत्र वाणिज्यिक बैंकिंग का कार्य कर रहा है।

प्रारंभ में ये बैंक मुख्यतः व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योगों के संगठित क्षेत्र को वित्त सुलभ करने का काम करते रहे लेकिन बाद में कृषि, छोटे व्यापारियों तथा छोटे छोटे ऋण आकांक्षियों को भी वित्त सुलभ करने का काम भी सक्रिय रूप से करने लगे।

भारत में कार्यरत वाणिज्यिक बैंक स्वामित्व तथा प्रबंध नियंत्रण के आधार पर कई उपवर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं।

भारत में जो विदेशी वाणिज्यिक बैंक हैं वे विदेश में निगमित संयुक्त स्कन्ध वाले बैंकों की शाखाएं हैं । ये बैंक भारत के विदेश व्यापार के लिए वित्त सुलभ करने के अतिरिक्त देश में बैंकिंग व्यवसाय भी करते हैं।

वाणिज्यिक बैंकों की संगठन प्रणालियाँ

संगठन के दृष्टिकोण से वाणिज्यिक बैंकों को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है–(1) शाखा बैंकिग तथा (2) इकाई बैंकिग

(1) शाखा बैंकिग

शाखा बैंकिग प्रणाली के अंतर्गत बैंक के एक प्रधान कार्यालय के अतिरिक्त उसकी अनेक शाखाएं देश में फैली होती है और कभी–कभी कुछ शाखाएं देश के बाहर भी होती है। इग्लैड, जर्मनी, कनाडा, फ्रांन्स, आस्ट्रेलिया आदि देशों में इसी प्रकार की बैंकिग व्यवस्था है। इंग्लैंड के महान पाँच बैंकों –मिडलैंड, लॉयड्स, बर्कलेस, वेस्टमिन्स्टर तथा नेशनल प्राविंशियल– की शाखाएँ देश भर में फैली हुई है तथा उन्होंने इंग्लैंड की अधिकांश बैंकिग संस्थाओं पर अपना आधिपत्य स्थापित कर रखा है। भारत में भी वाणिज्यिक बैंकों की शाखाएं देश भर में फैली हुई है। अमेरिका में शाखा बैंकिग का आरम्भ 1909 में केलीफोर्निया में एक अधिनियम के अंतर्गत हुआ था और इसके पश्चात् इसकी उन्नति हुई है।

शाखा बैंकिग प्रणाली के गुण

(क) बड़े पैमाने के व्यवसाय तथा श्रम विभाजन के लाभः–एक ही बैंक का विशाल संगठन होने के कारण उसके व्यापार की मात्रा अधिक होती है। अनेक शाखाएँ होने के कारण अधिक मात्रा में जमाराशियां प्राप्त की जा सकती है तथा पूँजी का बडे पैमाने पर लाभदायक निवेश संभव होता है। कार्य का संचालन करने के लिए ये बैंक ऊँचे वेतन पर योग्य विशेषज्ञ रख सकते हैं। समस्त कार्य का वैज्ञानिक पद्धति से विभाजन कर श्रम विभाजन तथा

विशिष्टिकरण का उपयोग संभव होता है। जिसके फलस्वरूप कम लागत पर अधिक कार्यक्षमता प्राप्त की जा सकती है।

(ख) नकद कोषों में बचतः—शाखा बैंकिग प्रणाली के अंतर्गत विभिन्न शाखाओं पर कम मात्रा में नकद कोष रखकर काम चलाया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर एक शाखा से दूसरी शाखा को नकदी का हस्तांतरण किया जा सकता है। शाखाएँ न होने पर बैंक के लिए बडी मात्रा में नकद कोष रखना आवश्यक होता है।

(ग) सस्ती एवं सुगम मुद्रा का प्रेषण—इस प्रणाली में कम व्यय पर सुविधापूर्वक मुद्रा का प्रेषण संभव होता है क्योंकि अनेक स्थानों पर शाखाएं होने के कारण एक शाखा से दूसरी शाखा को धन भेजने में न कोई असुविधा होती है न ही अधिक खर्च होता है। केवल पात्र के द्वारा की प्रेषण हो जाता है। विभिन्न देशों मे ब्याज की दर भी समान बनी रहती है, क्योंकि एक स्थान पर ब्याज अधिक होने से वहाँ अधिक धन आने लगता है और कम होने से पूर्ति कम हो जाती है।

(घ) व्यावसायिक जोखिम का भौतिक वितरणः—बैंक की शाखाएं देश भर में फैली होने के कारण जोखिम का भौगोलिक आधार पर वितरण हो जाता है। देश के विभिन्न भागों में स्थापित अलग—अलग उद्योगों तथा व्यवसायों में बैंक निवेश करता है तथा इससे एक क्षेत्र अथवा व्यवसाय मे होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति दूसरे क्षेत्र तथा व्यवसाय से प्राप्त लाभ से हो जाती है। यही कारण है कि महान मंदी के काल मे इंग्लैंड के बैंक इतने प्रभावित नहीं हुए, जितना प्रभाव अमेरिका के इकाई बैंकों पर पड़ा।

(ङ) बैंकिग सेवाओ का विस्तारः—शाखा बैंकिग के द्वारा देश के उन सभी छोटे व बड़े नगरों का जहाँ एक स्वतंत्र बैंक की स्थापना करना संभव नहीं होता है, बैंकिग सेवाएं प्राप्त हो जाती हैं।

(च) साधनों का कुशल निवेशः—ऐसे बैंकों के पास पर्याप्त साधन तथा योग्य कर्मचारियों के होने के कारण बैंक केवल अच्छी प्रतिभूतियों मे ही धन का निवेश करते हैं। बैंक को निवेश के लिए विस्तृत क्षेत्र मिलता है और पूँजी उन शाखाओं को भेज दी जाती है जहाँ निवेश से अधिकाधिक लाभ उठाया जा सकता है। इससे बैंकों के लाभ में वृद्धि के साथ—साथ राष्ट्रीय उत्पादन में भी वृद्धि होती है।

(छ) कर्मचारियों का प्रशिक्षणः—बैंकिग का विस्तृत क्षेत्र तथा विविध कार्य होने के कारण बैंक कर्मचारियों को सभी प्रकार की बैंकिग व्यवसाय का अनुभव प्राप्त होता है। बैंक अपने कर्मचारियों को ट्रेनिंग देने का विशेष व्यवस्था करते हैं

(ज) देश की आर्थिक स्थिति का ज्ञानः—देश के सभी भागों से संपर्क होने के कारण इन बैंकों को देश के सभी क्षेत्रों की सही आर्थिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती रहती है जिससे बैंक की पूँजी का निवेश करने की सुविधा रहती है।

शाखा बैंकिग प्रणाली के दोष

(क) प्रबंध, निरीक्षण तथा नियंत्रण की कठिनाइयाँः—सभी शाखाओं का प्रबंध केंद्रीय कार्यालय द्वारा होता है। विस्तृत कार्य क्षेत्र तथा विशालकाय संगठन होने के कारण इस प्रणाली में

कुशल प्रबन्धन, उपयुक्त निरीक्षण तथा नियंत्रण के अभाव की अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है।

(ख) एकाधिकार को प्रोत्साहनः—पूँजी का अत्यधिक केंद्रीयकरण होने से आर्थिक सत्ता थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित हो जाती है जिससे एकाधिकार की प्रवृति को अनावश्यक प्रश्रय मिलता है। इससे समाज का हानि होती है।

(ग) व्ययपूर्ण प्रणालीः—शाखा बैंकिग प्रणाली काफ़ी खर्चीली होती है, क्योंकि प्रत्येक शाखा की स्थापना पर अलग—अलग व्यय करना पड़ता है। शाखाओं की संख्या अधिक होने पर समंवय, नियंत्रण तथा निरीक्षण आदि पर भी काफ़ी व्यय करना पड़ता है।

(घ) छोटे व्यापारियों की उपेक्षा—छोटे—छोटे व्यापारियों का धन इकट्ठा करके बड़े व्यापारियों को दिया जाता है, क्योंकि एक तो इन बैंकों के संगठन में बड़े व्यापारियों का महत्वपूर्ण हाथ होता है और दूसरे बड़े व्यापारियों को ऋण देना अधिक सुरक्षित तथा लाभदायक समझा जाता है।

(ङ) प्रतियोगी विकास को प्रोत्साहनः—प्रत्येक नगर तथा क्षेत्र में सभी प्रमुख बैंकों की अलग—अलग शाखाएं होती है जिनके बीच प्रतियोगिता की संभावना रहती है। बैंकिग सुविधाओं का अनावश्यक दोहरापन होता है तथा छोटे बैंकों के साथ हानिकारक प्रतिस्पर्धा प्रारंभ होती है।

(च) दुर्बल शाखाएंः—शाखा बैंकिग प्रणाली में दुर्बल तथा हानिप्रद शाखाएँ भी सुदृढ़ तथा लाभदायक शाखाओं के बल पर जीवित बनी रहती है। यह बैंकों के लिए बहुत अहितकर होता है क्योंकि यदि बैंक की कुछ शाखाओं में हानि होती है तो उसका प्रभाव समस्त शाखाओं पर पड़ता है।

(छ) लोच एवं पहल की प्रेरणा का अभावः—शाखाओं को प्रधान कार्यालय के आदेशों का पालन करना होता है, जिसके कारण स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार शाखाओं के मैनेजर स्वतंत्र निर्णय नहीं ले पाते। फलस्वरूप कार्य में लोच का अभाव रहता है। चूँकि प्रत्येक कार्य कार्यालय से पूँछकर करना पड़ता है, इसलिए इसमें पहल करने की प्रेरणा का अभाव पाया जाता है।

(ज) पिछड़े क्षेत्रों के विकास में बाधाः—देश के सभी क्षेत्रों में शाखाएँ होने के कारण छोटे तथा पिछड़े स्थानों से पूँजी एकत्रित होकर बडे—बडे औद्योगिक तथा व्यावसायिक केंद्रों में पहुँच जाती है, क्योंकि बैंक पूँजी का निवेश वहाँ करना अधिक लाभपूर्ण समझते हैं। इससे पिछड़े क्षेत्रों का विकास नहीं हो पाता, क्योंकि वे विकास के लिए स्वयं अपनी बचतों के प्रयोग से भी वंचित रह जाते हैं।

(झ) विदेशों में कठिनाइयाँः—विदेशों में शाखाएँ स्थापित करने से अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि विदेशों में बैंकिग कानून, व्यापारिक परिस्थितियाँ तथा मौद्रिक नीतियाँ अलग—अलग होती है। विदेशों में इन शाखाओं के राष्ट्रीयकरण का भय भी सदैव बना रहता है।

इस प्रकार शाखा बैंकिग प्रणाली के अनेक गुण होते हुए भी एक सीमा के भीतर ही रहना पड़ता हैं क्योंकि सीमा का उल्लंघन करने में व्यापक हानियाँ होती है। शाखाओं का अंधाधुध विस्तार करने से बैंकिग मे दोष उत्पन्न होने लगते हैं।

इकाई बैंकिग

इकाई बैंकिग प्रणाली के अंतर्गत एक बैंक का कार्य साधारणतया एक ही कार्यालय तक सीमित रहता है, यद्यपि एक सीमित क्षेत्र में ये बैंक अपनी कुछ शाखाएं भी स्थापित कर लेते है। केष्ट के शब्दों में इकाई बैंकिग प्रणाली में प्रत्येक स्थानीय बैंकिग संस्था एक पृथक् पंजीकरण होता है और जिसकी स्वयं की अपनी पूँजी संचालक मंडल तथा स्कन्धधारी होता है। इस प्रकार की प्रणाली अमेरिका में बहुत प्रचलित है जहाँ हजारों छोटे–छोटे बैंक है जिनका केवल एक ही कार्यालय होता है। शाखा बैंकों की तुलना में इकाई बैंकों की पूँजी तथा व्यवसाय काफी सीमित होते हैं। इकाई बैंकिग प्रणाली इस विचारधारा पर आधारित है कि एक बैंक का प्रारंभ स्थानीय व्यक्तियों द्वारा ही होना चाहिए। इस प्रकार इस प्रणाली में बैंक के कार्य का स्थानीय आर्थिक व सामाजिक संगठन के साथ एकीकरण होता है। प्रत्येक स्थानीय बैंक एक अलग संस्था के रूप में अपने क्षेत्र में व्यापारियों, उद्योगपतियों तथा कृषकों से संबंधित होता है।

चूँकि एक बैंक की अपनी शाखाएँ एक सीमित क्षेत्र से बाहर नहीं होती है, इसलिए धन के स्थानान्तरण तथा अन्य कार्यो के लिए विभिन्न बैंकों के बीच आपसी समझौता किया जाता है, जिसके अंतर्गत एक बैंक अन्य बैंकों का प्रतिनिधित्व करता है। ये बैंक अपने नकद कोष अन्य बड़े बैंकों में जमा कर देते है तथा उनके द्वारा देश के एक भाग से दूसरे भाग को धन का प्रेषण करते हैं इन बैंकों को संचार बैंक कहा जाता है।

इकाई बैंकिग के गुण

(1) प्रबंध, निरीक्षण तथा नियंत्रण में सुविधाः–बैंक का व्यवसाय छोटे पैमाने पर सीमित क्षेत्र में होने के कारण प्रबंध, निरीक्षण तथा नियंत्रण की कठिनाइयाँ उत्पन्न नहीं होती है।

(2) स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारितः–इस प्रणाली में स्थानीय बैंकिग आवश्यकताओं का विशेष ध्यान रखा जाता है तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार ही बैंक के नियम बनाए जाते है। स्थानीय जनसंख्या से प्रत्यक्ष तथा व्यक्तिगत संपर्क एवं स्थानीय प्रबंध होने के कारण बैंक का संचालन तथा इसकी कार्यविधि स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होती है।

(3) अकुशल बैंकों की संपत्तिः–इकाई बैंकिग प्रणाली में केवल कुशल बैंक ही जीवित रह सकते है। शाखा प्रणाली में तो दुर्बल शाखाएँ कुशल शाखाओं के बल पर जीवित रहती है परंतु इकाई प्रणाली मे अकुशल बैंक समाप्त हो जाते हैं जो मुद्रा बाज़ार के लिए हितकर होता है।

(4) एकाधिकार के विकास पर रोकः–बैंकों के छोटे–छोटे एवं स्थानीय होने के कारण यह भय नहीं रहता कि अर्थ व्यवस्था में कुछ बैंकों का एकाधिकार हो जाएगा।

(5) कार्य–कुशलता में वृद्धिः–प्रबन्ध स्थानीय होने के कारण बैंक के कार्यो से संबंधित निर्णय शीघ्र लिया जा सकता है जिससे विलम्ब नहीं होता है। इस प्रकार की व्यवस्था में नौकरशाही तथा दीर्घसूत्रता का प्रभाव नहीं रहता है।

(6) व्यवसाय के पहल की प्रेरणाः–स्थानीय प्रबन्ध तथा स्थानीय परिस्थितियों की जानकारी के कारण बैंकों में पहल करने की प्रेरणा रहती है। इससे बैंकिग व्यवस्था में समय–समय पर आवश्यक परिवर्तन होते रहते है।

(7) मुक्त उद्यम सिद्धान्त के अनुकूलः–इकाई बैंकिग प्रणाली मुक्त उद्यम सिद्धांत पर आधारित है।

इकाई बैंकिग के दोष

(1) सीमित साधनः–बैंकों का छोटा आकार तथा सीमित क्षेत्र होने के कारण उनके साधन भी सीमित रहते हैं तथा बड़े–बड़े व्यापारियों और उद्योगों की आवश्यकताओं को ये बैंक पूरा नहीं कर पाते, जिससे आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

(2) श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण का अभावः–व्यवसाय का पैमाना छोटा होने के कारण बैंक की प्रबंध कुशलता, विशिष्टीकरण तथा कार्यविधियों से संबंधित सुधार करना कठिन होता है।

(3) जोखिम के भौगोलिक वितरण का अभावः–बैंक का कार्य क्षेत्र स्थानीय होने के कारण जोखिम का भौगोलिक वितरण नहीं होता, जिसके परिणामस्वरूप बैंक की स्थिरता कम होती है तथा स्थानीय मंदी अथवा अन्य कठिनाइयाँ उत्पन्न होने पर बैंकों के विफल होने का भय बना रहता है।

(4) बैंकिग कार्य में अधिक व्ययः–बैक की शाखाएँ न होने के कारण नकदी एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजना कठिन तथा व्ययपूर्ण होता है। संचार बैंकों की सहायता से भी नकदी का स्थानान्तरण अधिक व्ययपूर्ण होता है।

(5) ब्याज दर में असमानताः–कठिन तथा व्ययपूर्ण होने के कारण देश में सभी भागों में ब्याज की दर में समानता नहीं पाई जाती है।

(6) बैंकिग सुविधाओं के विस्तार में कठिनाईः– इकाई बैंकिग प्रणाली के अंतर्गत छोटे तथा पिछड़े हुए स्थानों में बैंकिग का विस्तार नहीं किया जा सकता क्योंकि केवल बड़े शहरों मे ही स्वतंत्र बैंक स्थापित किए जाते है।

(7) सरकारी नियंत्रण में असुविधाः–इकाई बैंकिग प्रणाली में सरकार अथवा केंद्रीय बैंक द्वारा बैंकों का नियंत्रण तथा निरीक्षण असुविधाजनक होता है। प्रत्येक बैंक पर अलग–अलग निगरानी रखना बड़ा कठिन कार्य है।

केण्ट के अनुसार,'' हमारी इकाई बैंकिग व्यवस्था में असफलताएँ ऐसे हजारों बैंकों को, जिनमें अधिकांश के पास कार्य करने के लिए न तो पर्याप्त साधन है और न व्यावसायिक अवसर बनाये रखने के औचित्य पर गंभीर प्रश्न चिन्ह हैं।''

इकाई बैंकिग प्रणाली में सुधार

इकाई बैंकिग के विभिन्न दोषों को दूर करने के लिए अमेरिका में निम्नलिखित प्रयास किए गए हैं।

(1) श्रृंखलाकारी तथा समूह बैंकिग का विकासः—वर्तमान शताब्दी में अमेरिका में श्रृंखलाकारी बैंकिग तथा समूह बैंकिग प्रणालियों के विकास की ओर ध्यान दिया गया है। श्रृंखलाकारी बैंकिग के अंतर्गत दो अथवा अधिक बैंकों पर एक ही व्यक्ति अथवा वर्ग का प्रभुत्व होता है। समूह बैंकिग प्रणाली के अंतर्गत दो अथवा अधिक बैंकों का प्रमण्डल अथवा ट्रस्ट द्वारा होता है। इन प्रणालियों मे शाखा तथा इकाई बैंकिग प्रणालियों के लाभ विद्यमान होते हैं क्योंकि प्रत्येक बैंक अलग—अलग होने पर भी स्वामित्व की एकता के कारण इनमें परस्पर संबंध स्थापित हो जाते हैं। 1930 ई. में महान् मंदी के पूर्व इन प्रणालियों का तेजी से विकास हो रहा था तथा इनके सदस्य बैंकों की संख्या निरंतर बढ़ रही थी। मंदी काल में अनेक श्रृंखला कंपनियों तथा बैंकिग समूहों के विफल होने के कारण बाद के वर्षो में इनका धीरे—धीरे पतन होता रहा है।

(2) सीमित क्षेत्र में शाखाओं का विस्तारः—कुछ बैंकों को सीमित क्षेत्र के भीतर शाखाएं खोलने का अधिकार दिया गया है। परिणामस्वरूप शाखाओं वाले बैंकों की संख्या तथा उनकी शाखाओं की कुल संख्या में निरंतर वृद्वि हुई है।

(3) कॉरेसपोण्डेण्ट बैंकों की स्थापनाः—ये बैंक बड़े नगरों में होते हैं और इसमें ग्रामीण क्षेत्रों में तथा छोटे बैंक अपने खाते खोलते हैं और नकद कोष जमा कराते हैं। इन सामान्य बैंकों के बीच रकम का लेन—देन आसान हो जाता है। ये बड़े बैंक छोटे बैंकों के फालतू धन को उपयोगी कार्यो में लगाते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर ऋण देकर उनकी आर्थिक सहायता भी करते हैं। ये छोटे बैंकों को व्यावसायिक मामलों पर परामर्श भी देते हैं।

उपर्युक्त सुधारों के परिणामस्वरूप इकाई प्रणाली वाले बैंकों को भी शाखा प्रणाली के कुछ गुण प्राप्त हो जाते हैं।

शाखा बैंकिग श्रेष्ठ है अथवा इकाई बैंकिग

दोनों प्रणालियों के गुणों तथा दोषों का विवेचन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही में अच्छाईयाँ है और बुराईयाँ भी, इसलिए किसी एक प्रणाली के पक्ष में निर्णय देना कठिन है। **प्रो. टॉमस** ने शाखा बैंकिग तथा इकाई बैंकिग प्रणालियों की तुलना करने हुए लिखा है, ''यद्यपि दोनों प्रणालियाँ अपूर्ण है। परंतु दोनों की कार्य पद्धति को देखने से यह ज्ञात होता है कि शाखा बैंकिग प्रणाली श्रेष्ठ हैं।'' अमेरिका की अपनी विशेष परिस्थितियों में प्रत्येक भाग में पर्याप्त पूँजी तथा अन्य साधन उपलब्ध होने के कारण इकाई बैंकिग ठीक हो सकती है, परंतु वहां भी सभी मुद्राशास्त्री इकाई बैंकिग की उपयुक्तता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है तथा इस प्रणाली के स्थान पर धीरे—धीरे शाखा बैंकिग को अपनाया जा रहा है। सन् 1930 की महान् मंदी ने यह सिद्ध कर दिया था कि संकटकालीन स्थिति का सामना करने के लिए इकाई बैंकिग की अपेक्षा शाखा बैंकिग ही अधिक उपयुक्त है।

भारत जैसे अर्द्ध विकसित देश में जहाँ पूँजी की कमी है, जनता की आय कम है, बैंकिग प्रणाली का विशेष विकास नहीं हुआ है तथा देश में अधिकतर पिछड़े हुए और ग्रामीण क्षेत्र है, शाखा बैंकिग प्रणाली विशेष रूप से लाभदायक है, परंतु शाखा प्रणाली के सफल संचालन के लिए यह आवश्यक है कि स्थानीय परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुसार प्रत्येक शाखा अपनी नीति तथा कार्य प्रणाली में परिवर्तन करे जिससे व्यवसाय की उन्नति हो तथा बैंकिग व्यवस्था मे लोच उत्पन्न हो सके।

भारत ने प्रारम्भ से ही शाखा बैंकिग को अपनाया है और ऐसा करने के कुछ कारण भी रहे हैं। आधुनिक प्रकार के बैंकों की संख्या कम होने के कारण देश के विभिन्न भागों में बैंकिग की सुविधाएं बढ़ाने का एकमात्र उपाय शाखाओं को स्थापित करना था। साधनों की कमी के कारण प्रत्येक शहर में अलग से स्वतंत्र बैंक नहीं बनाए जा सकते थे। देश की विशालता एवं पिछड़ेपन को देखते हुए यह प्रणाली देश के लिए लाभदायक सिद्ध हुई है तथा भारत में बैंकों की शाखाएँ तेजी से बढ़ रही है। स्टेट बैंक तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अन्य बैंकों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में भी शाखाएँ स्थापित की है।

श्रेष्ठ बैंकिग प्रणाली की विशेषताएँ

आधुनिक युग में किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए एक अच्छी बैंकिग व्यवस्था का होना आवश्यक है। हम पहले देख चुके हैं कि आर्थिक विकास के लिए बैंकों से अनेक प्रकार की सहायता मिलती हैं। बचत को प्रोत्साहित कर तथा निष्क्रिय बचतों को एकत्र कर बैंक पूँजी निर्माण की मात्रा को बढाते हैं। पूँजी के अभाव में बैंक साख के निर्माण द्वारा औद्योगिक तथा व्यापारिक विकास की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। अतएव एक श्रेष्ठ बैंकिग प्रणाली का होना अति आवश्यक है। एक श्रेष्ठ बैंकिग प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

(1) बैंकों का सुदृढ़ होना आवश्यक है जोकि तभी संभव है जब उनके पास पर्याप्त पूँजी का रक्षित कोष हो जिसे संकट की स्थिति में प्रयोग किया जा सके।

(2) बैंकों के पास पर्याप्त तरलता होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में बैंकों के पास पर्याप्त नकदी हो अथवा उनके कोषों का एक भाग इस रूप में हो कि आवश्यकता पड़ने पर इसे नकदी में बदला जा सके। ऐसी अर्थव्यवस्थाएं जहां चैकों के बजाय नकद मुद्रा का भुगतानों के लिए अधिक प्रयोग किया जाता है, वहाँ बैंकों को पर्याप्त मात्रा में नकदी रखनी चाहिए। इससे बैंकों की आय तो कम हो जाती है परंतु उनके प्रति ग्राहकों का विश्वास बढ़ता है। आवश्यक है कि बैंकों के लाभकारी निवेशों तथा तरल साधनों के बीच एक उपयुक्त अनुपात बनाए रखा जाय।

(3) बैंकों का लाभदायकता का त्याग नहीं करना चाहिए। बैंक एक व्यावसायिक संगठन है, जिसका लाभपूर्ण होना आवश्यक है। बैंक को अपने साधन जुटाने और उनका ऋणों अथवा निवेशों के रूप में प्रयोग करते समय लाभदायकता के पक्ष को ध्यान में रखना चाहिए। कार्य संचालक व्यय को नियंत्रित रखना भी आवश्यक है।

(4) एक श्रेष्ठ बैंकिग प्रणाली के लिए देश की आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल होना आवश्यक है। कुछ देश विकसित है तो कुछ अर्द्ध विकसित, कुछ उद्योग प्रधान हैं तो कुछ कृषि प्रधान और कुछ के लिए विदेशी व्यापार की सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यदि बैंकिग प्रणाली देश की आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल होती है तो आर्थिक विकास में यह अधिक सहयोग दे सकती है।

(5) देश के सभी वर्गो द्वारा बचत को प्रोत्साहन देना तथा एकत्र करना अच्छी बैंकिग प्रणाली का सबसे बड़ा उद्देश्य होना चाहिए। विभिन्न प्रकार के खातों की सुविधा देकर जब छोटी–छोटी निष्क्रिय बचतें एकत्र करके निवेश के लिए दी जाती है तो यह सक्रिय पूँजी बन जाती है, जिससे औद्योगिक तथा व्यापारिक विकास में सहायता मिलती है। यह भी आवश्यक है कि भौगोलिक आधार पर भी बैंक की शाखाओं का व्यापक विस्तार हो।

(6) साख के विस्तार में पर्याप्त लोच होते हुए भी मात्रा पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। मुद्रा के समान साख भी व्यापार के लिए बहुत बड़ा वरदान हैं। परंतु नियंत्रण के बाहर होने पर यह आर्थिक संकट का एक बहुत बड़ा कारण भी बन जाती है। साख का विस्तार अर्थ व्यवस्था की मौद्रिक आवश्यकताओं के अनुकूल ही होना चाहिए ताकि विकास के साथ–साथ स्थिरता को भी बनाए रखा जा सके। ऋणों की वसूली में कुशलता भी आवश्यक है।

(7) बैंकिग प्रणाली समन्वित होनी चाहिए अर्थात् विभिन्न बैंकों में न तो कहीं अनावश्यक प्रतियोगिता हो और न कहीं बैंकिग सुविधाओं का नितान्त अभाव हो। बैंकिग व्यवस्था में उचित समन्वय होना आवश्यक है।

(8) समाशोधन तथा धन स्थानान्तरण की कुशल व्यवस्था बैंकिग के विकास में सहायक होती है।

(9) बैंकिग प्रणाली की कार्य व्यवस्था देश की उत्पादन संबंधी आवश्यकताओं के साथ संबंधित होनी चाहिए। एक श्रेष्ठ बैंकिग प्रणाली देश में पूँजी निर्माण व पूँजी की गतिशीलता में सहायक होती है।

(10) कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण तथा प्रबंध में सुधार की उचित व्यवस्था करना भी आवश्यक होता है।

3.5 भारत में बैंकिंग कानून

भारत में बैंकिंग नियमन अधिनियम के पूर्व बैंकिंग का व्यवसाय भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 के अंतर्गत संचालित होता था। आधुनिक अर्थव्यवस्था में बैंकिंग पद्धति का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। बैंकिंग व्यवस्था का स्वरूप अत्यंत व्यापक हो गया है। बैंक मात्र रूपये में लेन-देन करने वाली संस्था ही नहीं समझे जाते हैं वरन इनका सामाजिक दायित्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। बैंकों पर उचित नियमन एवं नियंत्रण के उद्देश्य से वर्ष 1949 में बैंकिंग विनिमय अधिनियम, 1949 पारित किया गया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य बैंकों पर समान नीतियों एवं नियंत्रण लागू करना था। इसके माध्यम से बैंकों को सरकारी नियंत्रण में

लेन के लिए विशेष योगदान मिला है। इससे पूर्व, भारतवर्ष में बैंकों पर नियंत्रण करने के उद्देश्य से विशेष प्रावधान लागू किये जाते थे। बैंकों का विस्तृत आकार होने के साथ-साथ इन प्रावधानों का महत्व धीरे-धीरे घटता गया और देश में व्यापक नियंत्रण के उद्देश्य से एक सुसंगठित अधिनियम की आवश्यकता अनुभव की गयी। बैंकिंग विनिमय अधिनियम में आवश्यकतानुसार अनेक परिवर्तन किये गए हैं। इस अधिनियम में सबसे अधिक महत्वपूर्ण संशोधन 1968 एवं 1983 में किये गए।

3.7 बोध प्रश्न

1. बैंक की पूँजी के विभिन्न साधन कौन-कौन से हैं?
2. बैंकों की निवेश नीति क्या है? निवेश नीति के सिद्धांत का उल्लेख कीजिए।
3. बैंकों के निवेशों के विभिन्न प्रकार कौन-कौन से हैं?
4. केन्द्रीय बैंकिंग के सिद्धांत की विवेचना कीजिए। भारतीय रिज़र्व बैंक के क्या कार्य हैं?
5. केन्द्रीय बैंक को परिभाषित कीजिए। केन्द्रीय बैंक के सिद्धांतों एवं कार्यों का उल्लेख कीजिए।
6. साख पत्रों के विभिन्न प्रकार कौन-कौन से हैं?
7. भारतीय रिज़र्व बैंक पर एक नोट लिखिए। भारतीय रिज़र्व बैंक की कार्यप्रणाली का वर्णन कीजिए।
8. वाणिज्यिक बैंकिंग की नवीन प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
9. भारत में वाणिज्यिक बैंकों की संगठन प्रणालियों का उल्लेख कीजिए।
10. भारत में बैंकिंग कानून पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

- Gomez, Clifford (2010), Financial Markets, Institutions and Financial Services, PHI Learning, New Delhi.
- Gordon, Natarajan (2010), Financial Markets and Services, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Kohn Meir (1999), Financial Institutions and Markets, Tata McGraw Hill, New Delhi.

इकाई - 4 सहकारिता और अंतरराष्ट्रीय बैंक

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 सहकारी बैंकिंग प्रणाली
4.3 भारत में सहकारी बैंकिंग का महत्व
4.4 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
4.5 अंतरराष्ट्रीय बैंक
4.6 सारांश
4.7 बोध प्रश्न
4.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- सहकारी बैंकिंग प्रणाली को समझ सकेंगे।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की अवधारणा एवं कार्यप्रणाली को समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

सहकारी बैंक, बैंकिग का एक ऐसा विशेष रूप है जिसमें मनुष्य अपने आर्थिक हितों को उन्नत करने के लिए समानता के आधार पर स्वेच्छापूर्वक सम्मिलित होते है। सहकारिता शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, सह + कार्य। इसका अर्थ है मिलजुल कर कार्य करना। यह एक ऐसा बैंकिग संगठन है, जिसमें व्यक्ति स्वेच्छा से समान स्तर पर अपने आर्थिक हितों की उन्नति के लिए संगठित होते है। भारत मे कृषि सहकारी बैंकों का इतिहास सन् 1904 से प्रारम्भ हुआ।

2 अक्टूबर, 1975 को महात्मा गाँधी के जन्म दिवस पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की स्थापना इस आशय से की गई कि ये ग्रामीण साख को बढ़ावा देगें। सन 1975 में रिजर्व बैंक के उप–गर्वनर एम. नरसिम्हम की अध्यक्षता में भारत सरकार ने एक कार्य समिति इस उद्देश्य से नियुक्त की कि वह ग्रामीण क्षेत्र में लोगों के लिए संस्थागत साख के प्रवाह की समीक्षा करें। इस समिति ने ग्रामीण जनसंख्या के कमजोर वर्ग के लिए संस्थागत साख की

उपलब्धता के बारे में अध्ययन किया था और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैकल्पिक एजेंसी संबंधी सुझाव दिए थे। समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची की व्यापारिक बैंक ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्ग की विशेष रूप से और ग्रामीण समाज की सामान्य रूप से साख आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते। कार्यकारी समिति ने इसके विकल्प के रूप में यह सुझाव दिया कि एक नए प्रकार के बैकों की स्थापना की जाए। ये बैंक, सहकारी तथा व्यापारिक दोनों बैंकों की विशेषताओं की पूर्ति जारी रखेंगे। सहकारी बैंक के रूप में ये बैंक ग्रामीण समस्याओं का स्थानीय ज्ञान एवं इनसे परिचय बनाए रखेंगे और व्यापारिक बैंकों की भांति ये बैंक जमाओं को गतिशील बनाने के लिए आधुनिक तकनीक तथा संगठनात्मक योग्यताओं का प्रयोग करेंगे, अग्रिम उधार देंगे तथा मुद्रा बाज़ार तक पहुँच बनाए रखेंगे। सरकार ने कार्यसमिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और ग्रामीण बैंकों की स्थापना के लिए सितंबर 1977 में एक अध्यादेश जारी कर दिया।

ग्रामीण वित्त में लगी अनेक संस्थागत एजेंसियों के बीच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ग्रामीण क्षेत्र में एक निश्चित समूह को वित्त प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये नाबार्ड तथा मूल वाणिज्यिक बैंकों के मार्गदर्शन के अंतर्गत विशेष रूप रुपांकित वित्तीय सस्थाएँ हैं जो ग्रामीण क्षेत्र में फैली हैं और एक विशेष क्षेत्र अथवा जिले में अपनी शाखाओं के नेटवर्क द्वारा उनको वित्तीय सेवाएँ प्रदान करता है।

4.2 सहकारी बैंकिंग प्रणाली

सहकारी बैंकिग का संगठन

भारत में साख सहकारी समितियाँ या बैंकिग के संगठन का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है:

(क) साख की अवधि के अनुसारः—साख की अवधि के अनुसार समितियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है:

(i) अल्पकालीन तथा मध्यकालीन साख समितियाँः— ये समितियाँ अपने सदस्यों को थोड़े समय या मध्यकाल के लिए कर्जे देती है। इन समितियों को प्राथमिक सहकारी समितियाँ कहा जाता है।

(ii) दीर्घकालीन साख समितियाँः—ये समितियाँ लंबे समय के लिए कर्जे देती है। ये अपने सदस्यों की भूमि गिरवी रख कर कर्जे प्रदान करती है। इन्हें सहकारी कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक कहा जाता है।

(ख) संगठन के आधार परः—उपरोक्त दोनों प्रकार की समितियों को संगठन के आधार पर निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है:

(i) अल्पकालीन साख समितियाँ तीन प्रकार की होती है:

(अ) प्राथमिकता सहकारी साख समितियाँ

(आ) केंद्रीय सहकारी बैंक

(इ) राज्य सहकारी बैंक

टूल बाक्स – 02	
सहकारी बैंकिग का संगठन	**संगठन के आधार पर**
• साख के आधार पर ▪ अल्पकालीन तथा मध्यकालीन साख समितियाँ ▪ दीर्घकालीन साख समितियाँ	• अल्पकालीन साख समितियाँ प्राथमिक केंद्रीय राज्य • दीर्घकालीन साख समितियाँ प्राथमिक सहकारी कृषि विकास बैंक केंद्रीय सहकारी कृषि व ग्रामीण विकास बैंक

(ii) दीर्घकालीन साख समितियाँ दो प्रकार की होती हैः

(अ) प्राथमिक सहकारी कृषि एवं विकास बैंक

(आ) केंद्रीय सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

(अ) प्राथमिक कृषि सहकारी साख समितियाँ

संसार में सभी प्रकार की सहकारी समितियों में 44 प्रतिशत सहकारी साख समितियाँ है। भारत मे 64 प्रतिशत सहकारी आंदोलन में इनका प्रमुख स्थान है। इन समितियों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैः

(क) सदस्यता तथा आकारः–इन साख समितियों को क्षेत्र सीमित रखा जाता है। विभिन्न राज्यों में इनकी सदस्य संख्या विभिन्न है। परंतु अधिकतर राज्यों मे दस से अधिक व्यक्तियों को मिलकर एक समिति बनाने की सुविधा दी गई है। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने यह नियम स्वीकार कर लिया है कि ग्राम समुदाय को प्राथमिक इकाई मानकर सहकारी समितियों को बनाया जाना चाहिए। सरैया समिति के अनुसार प्रति समिति की सदस्य संख्या औसत 32 है।

(ख) उद्देश्यः–इन समितियों का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को अल्पकालीन तथा मध्यकालीन साख देना है। ये समितियाँ अपने सदस्यों मे बचत करने की प्रवृति को भी प्रोत्साहन देती हैं।

(ग) दायित्वः–सन् 1912 के सहकारी समिति कानून के अनुसार इन समितियों का दायित्व असीमित रखा गया है। कुछ अर्थशास्त्री सीमित दायित्व करने के पक्ष है परंतु उत्तर प्रदेश

और बिहार को छोड़कर, बाकी सभी राज्यों में इन समितियों का दायित्व असीमित ही रखा गया है।

(घ) प्रबंधः—साख समितियों का प्रबंध प्रजातन्त्रात्मक तरीकों से किया जाता है। प्रत्येक सदस्य को एक ही वोट देने का अधिकार मिलता है चाहे उसके कितने ही शेयर क्यों न हों। सभी सदस्यों के संगठन को सामान्य समिति कहा जाता है। ये सदस्य अपने में से कुछ सदस्यों की प्रबंध समिति चुन लेते हैं। प्रबंध समिति के सदस्यों को वेतन नहीं दिया जाता, केवल मंत्री को ही कुछ वेतन दिया जाता है।

(ङ) वित्तः—ये समितियाँ अपने कार्य को चलाने के लिए वित्त कई साधनों से प्राप्त करती है। इन साधनों को दो भागों में बाँटा जा सकता हैः—

(i) आन्तरिक साधनः—इन समितियों के आन्तरिक साधन कई है, जैसे—प्रवेश शुल्क, शेयर पूँजी, सदस्यों की जमा तथा रिजर्व फण्ड। ये समितियाँ थोड़ी रकम के शेयर बेचकर पूँजी इकट्ठे करती है।

(ii) बाहरी साधनः—ये समितियाँ सरकार, केंद्रीय वित्त संस्थाओं, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया आदि से धन प्राप्त करती हैं। इन समितियों में भेंट, दान, तथा अनुदान आदि के द्वारा भी धन की प्राप्ति होती है।

(च) कर्जेः—ये समितियां उत्पादन कार्यों के लिए अपने सदस्यों को अल्पकालीन ऋण देती हैं। ये मध्यकालीन साख भी एक सीमा तक दे सकती है। ऋण देते समय किसान की आर्थिक अवस्था पर विचार कर लिया जाता है और ऋण जमीन की जमानत पर दिए जाते है। अब फसल की जमानत पर भी ऋण दिए जाने लगे हैं। सदस्यों से ऋण पर ब्याज लिया जाता है किन्तु यह ब्याज काफी कम (6 प्रतिशत से 7 प्रतिशत) होता है। सदस्य अपने कर्जे किस्त में चुका सकते हैं।

(छ) लाभ का वितरणः—ये समितियाँ अपने लाभ का 25 प्रतिशत सुरक्षित कोष में रखकर बाकी अपने सदस्यों मे बाँट देती हैं।

(ज) निरीक्षणः—इन समितियों को अपना हिसाब किताब रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त निरीक्षकों द्वारा निरीक्षण करवाना पड़ता है।

वर्तमान स्थिति—2009—20 में प्राथमिक कृषि सहकारी समितियाँ की संख्या 94,942 हो गई है। इनके 1,320 लाख सदस्य है। इनकी जमाराशि रु. 97,224 करोड़ है। तथा रु. 49,614 करोड़ के ऋण दिए है। इनके रु. 58,620 करोड़ के ऋण बकाया है। शहरों में प्राथमिक सहकारी बैंकों की संख्या 1,587 है। इनकी जमा राशि रु. 93,089 करोड़ है। वर्ष 2006—07 में सहकारी बैंकों ने कृषि तथा संबंधित क्षेत्रों को रु. 42,480 करोड़ का संस्थागत साख उपलब्ध कराया।

(आ) केंद्रीय सहकारी बैंक

इन बैंकों की स्थापना 1912 के सहकारी समिति कानून के अनुसार हुई। ये बैंक प्राथमिक सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता प्रदान करने और उन्हें कुशलतापूर्वक संगठित करने में सहायक सिद्ध होते है। इन बैंकों की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैः—

(क) सदस्यता तथा कार्यक्षेत्रः—केंद्रीय बैंक के सदस्य, साख समितियाँ, दूसरे प्रकार की सहकारी समितियाँ तथा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रसिद्ध व्यक्ति बन सकते हैं। ये बैंक एक जिले या उसके किसी भाग की प्राथमिक समितियों की देखरेख करते हैं तथा उनको वित्तीय सहायता देते हैं। इन बैंकों का दायित्व सीमित होता है।

(ख) प्रबंधः—इन बैंकों के सभी सदस्य सामान्य सभा का निर्माण करते हैं। इसका प्रबंध एक संचालक मण्डल द्वारा होता है, जिसे साधारण सभा हर वर्ष एक सदस्य एक वोट के आधार पर चुनती है। इनकी सदस्य संख्या अलग—अलग हैं परंतु साधारणतया इनके सदस्य 10 से 24 तक है। ये बैंक अपना कार्य चलाने के लिए प्रशिक्षित स्टॉफ वेतन पर रखते हैं।

(ग) कार्यः—इन बैंकों का मुख्य कार्य सदस्य समितियों को रूपया उधार देना है।

(i) प्राथमिक कृषि साख समितियों को ये बैंक बिना किसी जमानत के रूपया उधार देते है, बाकि सदस्यों से जमानत लेते हैं।

(ii) ये बैंक साधारण बैंकिग कार्य; जैसे—लोगों का रूपया जमा करना, रुपये का स्थानान्तरण करना आदि कार्य भी करते हैं।

(iii) ये बैंक प्राथमिक समितियों की समस्याओं को सुलझाने में भी सहायता करते हैं।

(iv) कुछ राज्यों में यें बैंक प्राथमिक समितियों के निरीक्षण का भी कार्य करते हैं।

(v) केंद्रीय बैंक प्राथमिक समितियों में संतुलन स्थापित करते हैं। जिन समितियों के पास धन अधिक होता है उनसे रुपया अपने पास जमा कराते है और यह रुपया उन समितियों को उधार देते हैं जिनके पास धन कम होता हैं।

(घ) पूँजीः—इन बैंकों को पूँजी चार साधनों से प्राप्त होती हैः

(i) शेयर पूँजीः ये बैंक अपने सदस्यों को हिस्से बेचते है, शेयरों का मूल्य रु. 10 से रु. 100 तक होता है।

(ii) जमाः ये बैंक सदस्यों और गैर सदस्यों, दोनों का ही रुपया जमा करते है।

(iii) रिजर्व फंडः सन् 1912 के सहकारी समिति कानून के अनुसार इन बैंकों को अपने लाभ का 25 प्रतिशत भाग रिजर्व फण्ड के रूप में रखना पड़ता है। **मेहता कमेटी** ने यह सुझाव दिया था कि इन बैंकों को विशेष डूबा ऋण कोष बनाना चाहिए।

(iv) कर्जेः ये बैंक सस्ती दर पर सहकारी बैंकों तथा सरकार से भी कर्जा प्राप्त करते हैं। संक्षेप में, इन बैंकों को कई साधनों से पूँजी प्राप्त होती है।

(ङ) कर्जेः—ये बैंक व्यक्तियों और समितियों को कर्जे देते हैं। समितियों को कर्जे उनके प्रतिज्ञा पत्रों के आधार पर दिए जाते हैं। व्यक्तियों को कर्जे के लिए जमानतें देनी पड़ती है।

(च) प्रगतिः—मार्च, 2007 के अन्त में 371 केंद्रीय सहकारी बैंक कार्य कर रहे थे। इनकी जमाराशि रु. 94,529 करोड़ है। इन्होंने रु. 89,038 करोड़ के ऋण दिए हैं। इनके रु. 67,152 करोड़ के ऋण बकाया है। इसकी कुल परिसंपत्ति/दायित्व रु. 1,58,894 करोड़ था।

राजकीय सहकारी बैंक

प्रत्येक राज्य में एक प्रमुख सहकारी बैंक होता है जो राज्य के केंद्रीय बैंकों को रुपया उधार देता है और उनका निरीक्षण करता है। इन बैकों की स्थापना की सिफारिश **मैक्लगन कमेटी** ने 1915 में की थी, इनकी स्थापना सबसे पहले चेन्नई और महाराष्ट्र में हुई। अब प्रत्येक राज्य में एक राजकीय सहकारी बैंक है। इन बैंकों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है:

(क) सदस्यता:—भारत में राजकीय बैंकों की सदस्यता दो प्रकार की है। कुछ राज्यों; जैसे—पंजाब, हरियाणा, बंगाल और कर्नाटक में केवल सहकारी समितियां ही इन बैंकों की सदस्य बन सकती है। परंतु कुछ राज्यों; जैसे—महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार और असम में सहकारी समितियों के साथ—साथ व्यक्ति भी इन बैंकों के सदस्य बन सकते है; परंतु अब नये व्यक्तियों को सदस्य बनाना बंद कर दिया गया है।

(ख) प्रबंध:—इन बैंकों का संचालन करने के लिए, सदस्य सहकारी समितियों के प्रतिनिधियों तथा व्यक्तियों की एक साधारण सभा होती है। इसके सदस्य अपने में से कुछ सदस्यों को डायरेक्टर चुन लेते है। ये बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स ही राज्य सहकारी बैंक का संचालन करते हैं। कुछ राज्यों में सरकार भी अपने अधिकारियों को इन बोर्डों का डायरेक्टर नामज़द कर देती है।

(ग) कार्य:—राज्य सहकारी बैंकों के मुख्य कार्य निम्नलिखित है:—

(i) ये बैंक अपने राज्य के केंद्रीय सहकारी बैंकों के कार्य संचालन पर नियंत्रण रखते हैं।

(ii) सहकारी आंदोलन के लिए धन की व्यवस्था करते हैं।

(iii) सहकारी आंदोलन और राष्ट्रीय मुद्रा बाज़ार में संबंध जोड़ते है।

(iv) राज्य के विभिन्न केंद्रीय बैंकों के कार्यों में संतुलन रखते हैं।

(v) राज्य सहकारी आंदोलन को राष्ट्रीय सहकारी आंदोलन से जोड़ते है।

(vi) ये एक बैंक के अन्य कार्य भी करते हैं।

(घ) धन के साधन:—इन बैंकों को पूँजी मुख्य रूप से चार साधनों से प्राप्त होती है।

(i) शेयर पूंजी: इन बैंकों का सदस्य बनने के लिए कम से कम एक शेयर खरीदना आवश्यक है। इन बैंको के शेयर काफी ऊँचे मूल्य के होते है। ये बैंक केंद्रीय बैंक को जो कर्जा देते है वह उनके शेयरों पर निर्भर करता है। इसमे फलस्वरूप इनके अधिक शेयर बिक जाते हैं। सरकार भी इनके शेयर खरीद लेती है।

(ii) सुरक्षित कोष:—ये बैंक अपने लाभ का कुछ प्रतिशत भाग एक सुरक्षित कोष में जमा करते रहते हैं जिससे कि कठिनाई के समय में वे उनका प्रयोग कर सकें।

(iii) जमा:—इन बैंकों में सदस्य और गैर सदस्य दोनों ही अपना रुपया करवा सकते हैं। ये बैंक इन जमाओं पर ब्याज भी देते हैं।

(iv) ऋण:—इन बैंकों की वित्त व्यवस्था का सबसे मुख्य साधन कर्जा है। ये बैंक रिजर्व बैंक, राज्य सरकारों तथा राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक से ऋण प्राप्त करते हैं। राज्य

सरकारों की गारंटी पर इन्हें स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया तथा दूसरी संस्थाओं से भी रुपया उधार मिल जाता है। इन बैंकों की कार्यशील पूँजी का लगभग 50 प्रतिशत भाग केवल पूंजी से ही पूरा होता है।

(ङ) ऋण देनाः—ये बैंक केंद्रीय बैंक, प्राथमिक समितियों तथा व्यक्तिगत सदस्यों और सभी प्रकार के सहकारी संगठनों को कर्जे देते है। ये रिजर्व बैंक के पास भी धन जमा करते है और सरकारी प्रतिभूतियों में धन लगाते है। अब ये बैंक केंद्रीय भूमि विकास के ऋण पत्र भी खरीदने लग गए है।

(च) केंद्रीय बैंकों से साथ संबंधः—यें बैंक राज्य के केंद्रीय बैंकों की नीतियों और उनके कार्यो पर नियंत्रण रखते है। केंद्रीय बैंक के कार्यो में समन्वय भी करते है। ये केंद्रीय बैंकों को पुनर्मितिकाटा तथा ओवर ड्राफ्ट की सुविधाएं भी देते है।

(छ) रिजर्व बैंक के साथ संबंधः—राज्य सहकारी बैंक किसी राज्य के सहकारी आंदोलन और रिजर्व बैंक के बीच एक कड़ी का काम करते है। रिजर्व बैंक इन्हें बैंक दर से भी कम ब्याज पर रुपया उधार देता है। ये उनकी प्रतिभूतियों के आधार पर ऋण देता है। मध्यकालीन ऋण देने के लिए रिजर्व बैंक ने राष्ट्रीय कृषि साख कोष की स्थापना की थी। अब यह कार्य राष्ट्रीय कृषि एवं विकास बैंक करता है।

(ज) प्रगतिः—मार्च 2007 के अंत में 31 राज्य सहकारी बैंक थे। इनकी जमाराशि रु. 48,560 करोड़ थी। इन्होनें रु. 47,354 करोड़ के ऋण दिये। इनके रु. 47,354 करोड़ के ऋण बकाया है। इनकी कुल परिसंपतियाँ/दायित्व रु. 85,576 करोड़, कुल आय रु. 5,242 करोड़, कुल व्यय रु.4,967 करोड़ तथा प्रचालन लाभ रु. 777 करोड़ और शुद्ध लाभ रु. 275 करोड़ था।

भूमि विकास बैंक या राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक

किसानों को दीर्घकालीन साख देने के लिए विशेष प्रकार की समितियाँ बनाई गई है। इन्हें भूमि विकास बैंक कहते थे। अब इन्हें सहकारी कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक कहा जाता है। इन बैंकों की स्थापना सबसे पहले पंजाब में 1920 में झंग (पंजाब) नामक स्थान पर हुई। परंतु इसकी वास्तविक शुरूआत 1929 में हुई जब चेन्नई में एक केंद्रीय भूमि विकास बैंक खोला गया। भूमि विकास बैंक से अभिप्राय ऐसे बैंकों से है जो किसानों की भूमि को गिरवी या बंधक रखकर दीर्घकालीन ऋण देते है। ये बैंक दो प्रकार के होते हैः

(i) केंद्रीय भूमि विकास बैकः—इन्हें अब राज्य सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक कहा जाता है। इन बैंकों का कार्यक्षेत्र सारा राज्य होता है। ये बैंक प्राथमिक विकास बैंकों के द्वारा रुपया उधार देते हैं। उत्तर प्रदेश, गुजरात, जम्मू कश्मीर तथा बिहार में इन बैंकों ने अपनी शाखाएं विभिन्न स्थानों पर खोली हुई है। जहां प्राथमिक बैंक नहीं है।

(ii) प्राथमिक सहकारी कृषि एवं विकास बैंकः—इन बैंकों का कार्यक्षेत्र एक तहसील या जिला होता है। ये किसानों को प्रत्यक्ष रूप से दीर्घकालीन कर्जे देते हैं।

प्राथमिक सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंकों की कार्य प्रणाली

इन बैंकों की कार्य प्रणाली निम्न प्रकार हैः

(i) कार्यः—ये बैंक अचल संपति को बंधक रखकर कुछ विशेष उद्देश्यों के लिए कर्जे देते हैं; जैसे—पुराने कर्जे को चुकाने के लिए, भूमि तथा कृषि यंत्रों को खरीदनें के लिए और भूमि संबंधी सुधार करने के लिए अधिक से अधिक 20 वर्षो के लिए ऋण देते हैं।

(ii) सदस्यताः—इन बैंकों के सदस्य व्यक्ति और सहकारी समितियाँ दोनों हो सकती है।

(iii) पूँजीः—यें बैंक अपनी पूँजी शेयर बेचकर तथा सुरक्षित कोष रखकर प्राप्त करते है। पूँजी का सबसे अधिक भाग ऋणपत्रों या डिबेंचरों के द्वारा प्राप्त होता है। ऋणपत्र रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, जीवन बीमा निगम, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, सहकारी बैंक तथा राज्य सरकारें तथा राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक खरीदता है। सन् 1975 से केंद्रीय सरकार ने भी प्रत्यक्ष रूप से इन बैंकों में धन लगाना आरम्भ कर दिया है।

(iv) प्रगतिः—मार्च 2007 के अंत में भारत में 20 केंद्रीय सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक तथा 768 प्राथमिक सहकारी कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक थे। केंद्रीय बैंकों ने रु. 2,436 करोड़ के दीर्घकालीन ऋण दिए। इनके रु. 18,644 करोड़ के ऋण बकाया थे। प्राथमिक बैकों ने 2005—06 में रु. 17,713 करोड़ के ऋण दिए तथा इनके रु. 11,209 करोड़ के ऋण बकाया थे।

4.3 भारत में सहकारी बैंकिग का महत्व या लाभ या भूमिका

भारत के आर्थिक विकास में सहकारी बैंकिग का बहुत अधिक महत्व है। डेनमार्क, इजराइल, आयरलैंड जैसे देशों ने सहकारिता के कारण अपना आर्थिक विकास किया है। योजना आयोग के अनुसार, "पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए सहकारिता का बहुत अधिक महत्व है।" श्री जवाहरलाल नेहरु के अनुसार,"सहकारिता भारत की आधारभूत क्रिया बननी चाहिए।" डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सहकारिता के महत्व के विषय में लिखा है, "भारत जैसे देश मे जहाँ 82 प्रतिशत लोग ग्रामों में रहते है वहाँ कृषकों के जीवन विकास और ऋणग्रस्तता के लिए सहकारिता उन लोगों के संगठन पर आधारित है जिनके पास अन्य साधन नहीं है और जो व्यक्तिगत रूप में कोई साख नहीं रखते। ऐसे लोगों के आर्थिक संतुलन का यह आधार है। भारत में सहकारिता काफ़ी सक्रिय तथा जीवित है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस आंदोलन की काफ़ी समस्याएँ है परंतु वे विकास की समस्याएँ हैं, गतिहीनता की समस्याएँ नहीं है।"

भारत को सहकारिता से निम्नलिखित लाभ मिलने की आशा हैः—

(क) ब्याज की कम दरः—सहकारी बैंक किसानों तथा कारीगरों को सस्ते ब्याज पर रुपया उधार देते है। वे महाजनों के शोषण से बच जाते है। उन्हें उत्पादक कार्यो के लिए ही रुपया उधार मिलता है, इसलिए फिजूलखर्ची भी नहीं कर पाते।

(ख) कृषि उत्पादन में वृद्धिः—सहकारी बैंक किसानों को अच्छे बीज, खाद तथा पशु खरीदनें के लिए कर्जे देते हैं। उनकी भूमि की चकबंदी करने में सहायता देते है। सिंचाई तथा

यातायात की कमी को पूरा करते हैं। इसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन में काफ़ी वृद्धि होती है। हरित क्रांति की सफलता में सहकारिता का काफ़ी महत्व है। पंजाब तथा हरियाणा में गेहूँ क्रांति, महाराष्ट्र में गन्ना क्रांति तथा गुजरात के कपास क्रांति की सफलता मे सहकारी बैंकिग ने काफी सहयोग प्रदान किया है।

(ग) ग्रामीण जीवन की उन्नतिः—सहकारी बैंकों के फलस्वरूप किसानों की आय में वृद्धि होती हैं, उनका जीवन स्तर ऊँचा उठता है। भारत मे सहकारी बैंकों को लाभ का 10 प्रतिशत गांवों के विकास पर खर्च करना पड़ता है। इस प्रकार सहकारिता ग्रामीण जीवन की उन्नति का एक विशेष साधन है।

(घ) बचत को प्रोत्साहनः—सहकारी बैंक बचत को प्रोत्साहन देती है। इसके द्वारा लोगों द्वारा बचाई गई आय का ठीक उपयोग भी संभव होता है।

(ङ) नैतिक लाभः—सहकारी बैंक नैतिक गुणों का विकास करते हैं। सदस्यों में आत्मसम्मान, भाईचारे तथा आत्मविश्वास की भावना को प्रोत्साहन मिलता है। सदस्य मुकदमेबाजी, शराब की लत, फजूलखर्ची तथा जुए आदि की बुरी आदतों से बच जाता है।

(च) सामाजिक लाभः—सहकारी बैंकिग के असीमित उतरादायित्व के कारण इसके सदस्य बैंकों के कार्यकरण पर नियंत्रण रखते हैं। इनमें एक प्रकार की सामाजिक चेतना उत्पन्न हो जाती है। ये बैंक सामाजिक कल्याण के कामों जैसे कुएं, पार्क, पीने का पानी, चिकित्सालय आदि के निर्माण पर धन खर्च करते हैं।

(छ) शिक्षा संबंधी लाभः—सहकारी बैंकिग के सदस्यों को बैंकिग की शिक्षा मिलती है। उन्हें संगठन करने का ढंग आता है, उनके ज्ञान में वृद्धि होती है।

(ज) योजना में सहयोगः—भारत में पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता जनता के सहयोग पर निर्भर करती है। जनता का सहयोग बैंकिग द्वारा प्राप्त हो सकता है। इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं मे सहकारी बैकों को बहुत अधिक महत्व दिया गया है।

भारत में सहकारिता ने लगभग 94 वर्ष पूरे कर लिया है। परंतु सहकारी बैंकिग की कई कारणों से बड़ी धीमी प्रगति रही है। अभी तक यह आंदोलन किसानों की ऋण संबंधी केवल 40 प्रतिशत आवश्यकताओं को पूरा कर पाया है। देश की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या पर इसका प्रभाव पड़ा है। श्री एम. विश्वेश्वरैया के अनुसार,"जो कुछ भी इस दिशा में किया गया है वह भूमि कुरेदने के समान है।"

इस आंदोलन की धीमी प्रगति के मुख्य कारण निम्नलिखित हैः

(क) सरकार का अधिक हस्तक्षेपः—दूसरे देशों में सहकारी बैंकिग का जन्म सदस्यों की इच्छा के परिणामस्वरूप हुआ था। परंतु भारत में यह सरकार द्वारा चलाया जाता था और सरकार का इस पर अब भी बहुत अधिक नियंत्रण है। जनता इसे सरकारी काम समझती है। वह सहकारी बैंकों को कर्जा प्राप्त करने का साधन मानती है तथा कर्जे के रुपयों को सरकारी रुपया समझती है। इसलिए इन बैंकों का उचित विकास नहीं हो पाता है।

(ख) सहकारिता के सिद्धांतों के ज्ञान का अभावः—भारत में सहकारी बैंकिग का विस्तार मुख्य रुप में गांवों में हुआ है। हमारी ग्रामीण जनता सहकारिता का सच्चा अर्थ उनके उद्देश्य व आधार को नहीं समझती है। इस कारण वे सहकारिता को भली—भाँति नहीं समझ पाते और इसके विकास में कोई रुचि नहीं रखते हैं।

(ग) धन की कमीः—भारत में सहकारी बैंकों के पास धन की कमी होती है, क्योंकि सदस्य अधिक धन नहीं बचा पाते है। केंद्रीय संस्थाओं के पास भी जनता कम ही धन जमा करती है। धन की कमी के कारण ये बैंक सदस्यों की बहुत कम आवश्यकताएँ पूरी कर पाते हैं।

(घ) केवल उत्पादक ऋणः—सहकारी बैंक केवल उत्पादन कार्यो के लिए ऋण देते है। किसानों को अपनी दूसरी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए महाजनों पर निर्भर रहना पड़ता है।

(ङ) अशिक्षाः—भारत में व्यापक अशिक्षा के कारण सहकारी बैंकिग की प्रगति काफ़ी धीमी हो गई है। इन बैंकों को चलाने के लिए शिक्षा की बहुत आवश्यकता है। कई बार गाँवों में सहकारी समितियों के लिए शिक्षित सेक्रेटरी मिलना भी कठिन हो जाता है। शिक्षा के अभाव में कई समितियाँ असफल हो गई है।

(च) स्वार्थी लोगों द्वारा विरोधः—स्वार्थी लोगों द्वारा सहकारी बैंकिग का विरोध किया जाता है। गाँवों में महाजन तथा मण्डियों में व्यापारी इसका काफ़ी विरोध करते हैं।

(छ) अकुशल प्रबंधः—भारत में अधिकतर बैंकों के पदाधिकारी प्रशिक्षित नहीं होते। इसलिए वे बैकों का काम ठीक प्रकार से नहीं चला पाते। कर्जे देने में काफी देर की जाती है, उनकी वसूली के लिए भी विशेष प्रयत्न नहीं किया जाता।

(ज) भ्रष्टाचार तथा पक्षपातः—सहकारी बैंकों में भ्रष्टाचार तथा पक्षपात की बुराई पाई जाती है। पदाधिकारी अधिकतर अपने रिश्तेदारों, मित्रों और कृपापात्रों को कर्जा देते हैं।

(झ) दलबंदीः—अधिकतर बैंकों के संगठन में दलबंदी पाई जाती है। इसके कारण बैंकों का कार्य ठीक रूप से नहीं चल पाता।

(ञ) ऋण लौटाने में देरीः—सहकारी बैंकों के अधिकतर सदस्य ठीक समय पर अपने ऋण वापिस नहीं करते हैं जिसके फलस्वरूप कुछ सदस्यों पर बहुत अधिक कर्जा जमा हो जाता है। इससे इन ऋणों के कार्यों में बाधा पड़ती है। ऋणों के बहुत अधिक मात्रा से समय पर वापिस न होने की बुराई सहकारी बैंकिग का एक मुख्य दोष है।

(ट) दोषपूर्ण लेखा निरीक्षणः—इन बैंकों के हिसाब—किताब की जाँच ठीक प्रकार से नहीं हो पाती। अधिकतर बेईमान पदाधिकारियों द्वारा हिसाब—किताब में गड़बड़ की जाती है।

(ठ) असीमित दायित्वः—बैंकों का दायित्व असीमित होने के कारण धनी लोग इसके सदस्य नहीं बनते। इस कारण इसके पास आर्थिक साधनों का अभाव रहता है।

(ड़) बचत का अभावः—इन बैंकों मे लोग अपनी बचत को कम जमा कराते हैं। ये बैंक केवल ऋण लेने की एजेंसियां ही समझे जाते हैं। इन्हें अपनी पूँजी के लिए बाहरी साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है।

(ढ) समन्वय का अभावः—भारत में प्राथमिक, केंद्रीय तथा राज्य सहकारी बैंकों में समन्वय का अभाव पाया जाता है। इस कारण इनके कार्यों में बाधा पड़ती है।

(ण) क्षेत्रीय असमानताः—भारत मे सहकारी बैंकिग के संबंध में बहुत अधिक क्षेत्रीय असमानता पाई जाती है। सहकारी ऋण का 70 प्रतिशत भाग आठ राज्यों; पंजाब, हरियाणा, गुजरात, तमिलनाडु, आंध्रा प्रदेश, कर्नाटक, केरल द्वारा किया जाता है। बाकी राज्यों मे सहकारी बैंकिग का उचित विकास नहीं हो पाया है।

भारत में सहकारी बैंकिग को बढ़ावा देने के लिए सुझाव

रिजर्व बैंक के अनुसार सहकारी बैंक की व्यवस्था ने पूरे देश में बैंक की आदतों को फैलाने का उपयोगी कार्य किया है। लेकिन अपने दीर्घकालीन अस्तित्व के बावजूद अधिकतर सहकारी बैंकों को सुस्थिर आधार पर वित्तीय क्षमता प्राप्त करना बाकी है। इसलिए सहकारी वित्तीय संस्थाओं के सुधार पर ध्यान दिया जा रहा है।

भारत में सहकारी बैंकिग का विकास बहुत धीमा रहा है। इस बैकिग प्रणाली की सफलता निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करती हैः

(क) प्राथमिक समितियों का पुनर्गठनः—प्राथमिक समितियों का पुनर्गठन किया जाना चाहिए। छोटी और एक बहुउद्देशीय समितियों का गठन किया जाना चाहिए। इनका दायित्व भी सीमित होना चाहिए।

(ख) पूँजी की पूर्तिः—इन बैंकों के पास पूँजी की कमी है, उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक तथा सरकार को इन्हें कम ब्याज पर काफ़ी रुपया उधार देना चाहिए। सदस्यों को रुपया जमा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(ग) सहकारी बैंकिग का प्रचारः—सहकारी बैंकों के सिद्धान्तों तथा लाभों का काफ़ी प्रचार किया जाना चाहिए, जिससे लोग उन्हें समझ सकें।

(घ) बचतः—सहकारी बैंकों को गाँवों तथा शहरों मे छोटी—छोटी बचत इकट्ठी करने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे एक तो फिजूलखर्ची कम होगी तथा दूसरे इन बैंकों पूँजी में वृद्धि होगी।

(ङ) फसलों के आधार पर साखः—इन बैकों को ऋण खड़ी फसल के आधार पर देना चाहिए। इससे उन्हें भी ऋण मिल सकेगा। जिनके पास बहुत थोड़ी भूमि है। किसान अपने अल्पकालीन खर्चे आसानी से पूरा कर सकेंगे।

(च) प्रशिक्षणः—सहकारी बैंकिग की शिक्षा दिलाने का प्रबंध किया जाना चाहिए। इसके लिए एक संस्था सबसे पहले रिजर्व बैंक ने पूना में खोली थी। लगभग सभी राज्यों मे सहकारी बैंकिग का प्रशिक्षण दिए जाने का प्रबंध किया जाना चाहिए।

(छ) कम सरकारी नियंत्रणः—सरकार को सहकारी बैंकिग के संगठन पर अपना नियंत्रण कम कर देना चाहिए। इसके फलस्वरूप सहकारी बैंकिग आंदोलन में जनता की रूचि अधिक बढ़ेगी।

(ज) सहकारी बैंकों का पुनर्गठनः—केंद्रीय तथा राजकीय सहकारी बैंकों की आर्थिक दशा में सुधार किया जाना चाहिए जिससे वे अधिक ऋण दे सकें। केंद्रीय बैंकों को ऋण देने के अतिरिक्त प्राइमरी समितियों का, निरीक्षण भी करना चाहिए।

(झ) दीर्घकालीन साखः—भूमि विकास बैंकों का अधिक विकास किया जाना चाहिए किसानों को दीर्घकालीन ऋण मिल सकें और वे उसकी सहायता से भूमि तथा खेती का सुधार कर सकें

(ञ) सरकारी सहायताः—यदि सरकार किसानों की सहायता बैंकों द्वारा करेगी तो ये अधिक लोकप्रिय बन जायेगें और उनकी सदस्यता बढ़ेगी।

(ट) प्रबंध व्यवस्था में सुधारः—इन बैंकों की प्रबंध व्यवस्था में सुधार किया जाना चाहिए। बैंकों के चुने हुए पदाधिकारियों को भी सहकारिता का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इनके हिसाब—किताब की जाँच के लिए उचित प्रबंध किया जाना चाहिए।

(ठ) ऋण नीति में सुधारः—इन बैंकों को अपनी ऋण संबंधी नीति में सुधार करना चाहिए। ऋण की राशि उन्हीं लोगों को दी जानी चाहिए जिन्हें उसकी वास्तव में आवश्यकता है। ऋणी के उपयोग की निगरानी की जानी चाहिए। ब्याज की दर कम की जानी चाहिए। ऋण को वापिस लेने के विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए।

(ड़) समितियों के रक्षित कोषः—प्रत्येक बैंक को अपने रक्षित कोष में अधिक जमा करने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे वह आर्थिक संकट का सामना कर सकें।

(ढ़) दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन सहकारी साख का समन्वयः—रिजर्व बैंक ने अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सहकारी साख का समन्वय करने के लिए एक समिति की स्थापना की थी। इस समिति ने सुझाव दिया है कि दोनों प्रकार की साख का धीरे—धीरे समन्वय किया जाना चाहिए। इसने वर्तमान संस्थाओं के स्थान पर सहकारी जिला विकास बैंक तथा राजकीय सहकारी विकास बैंक की स्थापना का सुझाव दिया है।

सहकारी बैंकों के सुधार के लिए कपूर समिति की सिफारिशें

सहकारी बैंकिग प्रणाली के सुधार के संबंध में सुझाव देने के लिए अप्रैल 1999 में श्री जगदीश कपूर की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई थी। इस समिति ने 24, जुलाई, 2000 को सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। इस समिति की मुख्य सिफारिशें अग्रलिखित हैः

(क) संसाधनगत आधारः—इस कमेटी ने यह सुझाव दिया कि सहकारी बैंकिग संस्थाओं के सीमित साधनों को देखते हुए उनके संसाधनगत आधार खासतौर से पूँजी को मज़बूत किए जाने की आवश्यकता है।

(ख) विनियमन और नियंत्रणः—इस कमेटी के अनुसार सहकारी संस्थाओं पर सरकार के नियंत्रण को कम किया जाना चाहिए। उन्हें अधिकतम स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए। इस कमेटी के अनुसार सहकारी संस्थाओं को सदस्यों द्वारा संचालित बनाया जाना चाहिए। राज्य

सरकारों को आदर्श सहकारी सोसायटी कानून को लागू करना चाहिए। इस कमेटी ने यह भी सिफ़ारिश की थी कि सहकारी संस्थाओं पर नाबार्ड तथा सरकार दोनों का नियंत्रण नहीं होना चाहिए। इस पर केवल रिजर्व बैंक का ही नियंत्रण होना चाहिए।

(ग) सहकारी बैंकों मे व्यवसायीकरणः—सहकारी बैंकों को व्यावसायिक संगठनों की तरह मज़बूत प्रबंधकीय प्रणाली अपनानी चाहिए। बैंकों के बोर्डों में व्यावसायिक तथा शिक्षित सदस्य होने चाहिए। बैंकों के पास अपने कर्मचारियों से उचित काम लेने की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। इनके पास स्टॉफ की भर्ती के लिए उचित नीतियाँ होनी चाहिए।

(घ) कारोबार का विविधीकरणः—सहकारी बैंकों को सभी स्तरों पर विविध प्रकार के व्यवसाय करने चाहिए। सहकारी संस्थाओं को अपने कार्यकरण मे आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए। सहकारी बैंकों को इस बात की भी इजाजत होनी चाहिए कि वे अपनी जमा राशियों का 10 प्रतिशत भाग सहकारी दायरे के बाहर व्यापारिक तथा तकनीकी योजनाओं के लिए उधार दे सकें।

(ड़) लागत, मार्जिन तथा निधि प्रबंधः—सहकारी बैंकों को अपने कर्जो पर ऐसी ब्याज दरें लागू करनी होगी जो उनकी लागतों को पूरा करके लाभ प्रदान कर सकें। इन बैंकों को अपनी जमाराशियों पर बाज़ार में प्रचलित ब्याज दर देनी चाहिए। प्राथमिक कृषि ऋण समितियों को ऐसे काम करने के लिए नही मज़बूर किया जाना चाहिए, जिनसे उन्हें लाभ की प्राप्ति न हो।

(च) सहकारी बैंकों के स्तरों को कम करनाः—इस कमेटी के अनुसार बड़े राज्यों में सहकारी संगठनों की तीन स्तर वाली संरचना अर्थात् (1) प्राथमिक (2) केंद्रीय तथा (3) राज्य स्तरों को बनाए रखना आवश्यक हैं परंतु जिन क्षेत्रों मे केंद्रीय सहकारी बैंक कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर रहे हैं उन्हें आपस में मिला देना चाहिए। कमेटी ने भी इस बात की भी सिफ़ारिश की हैं कि अल्पकालीन ऋण देने वाली और दीर्घकालीन ऋण देने वाली संस्थाओं को अलग—अलग नहीं रखना चाहिए। सभी सहकारी समितियों को अल्पकालीन और दीर्घकालीन दोनों प्रकार के ऋण देने चाहिए।

(छ) पुनर्जीवन पैकेजः—कमेटी ने इस बात सिफ़ारिश की है कि उन सहकारी संस्थाओं को मज़बूत बनाया जाना चाहिए जिनमें विकास करने की क्षमता है। इसके लिए एक पैकेज लागू किया जाना चाहिए जिसके चार कार्यक्रम होः (1) वित्तीय (2) परिचालनगत (3) संगठनात्मक तथा (4) प्रणालीगत। इन सुधारों को लागू करने के लिए आवश्यक धन का 20 प्रतिशत भाग सदस्यों को शेयर पूँजी के रूप में जुटाना चाहिए तथा 80 प्रतिशत भाग केंद्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा बिना ब्याज के कर्जों के रूप में दिया जाना चाहिए।

(ज) सहकारी पुर्नव्यवस्था तथा विकास निधिः—कपूर समिति ने यह सिफ़ारिश की है कि नाबार्ड को 500 करोड़ रु. की राशि से सहकारी पुर्नव्यवस्था तथा विकास निधि की स्थापना करनी चाहिए। यह रकम केंद्रीय सरकार द्वारा नाबार्ड को दी जानी चाहिए। इस रकम का प्रयोग उन राज्यों को सहायता देने के लिए किया जाना चाहिए जो सहकारी संस्थाओं को मज़बूत बनाने की पूर्व शर्तें पूरी करती हो।

(झ) पूँजी सहायता :–सरकारी बैंकों के लिए आवश्यक है कि वे अपना पूंजीगत आधार मजबूत करने की दशा में आगे बढ़े और एक निश्चित अवधि में लागू मानदंडों के अनुरूप रहें।

(ञ) वसूली प्रबंधः–इस समिति ने यह भी सुझाव दिया है कि यहाँ ऋण का आधार एक लाख रु. से अधिक है मौजूदा डी. आर. टी. के प्रावधान को सहकारी बैंकों पर भी लागू किया जाना चाहिए। इसके फलस्वरूप कर्ज़ो की वसूली को जल्दी की जा सकेगी। सरकार को सहकारी बैंकों को ऋणों की वसूली के प्रयासों में सहायता करनी चाहिए। सरकार को ऋण माफ़ी की घोषणाओं से बचना चाहिए।

(ट) आंतरिक जाँच नियंत्रण तथा ऑडिटिंगः–सहकारी बैंकों मे उच्च श्रेणियों के अधिकारियों द्वारा नियमित रूप से निरीक्षण, आंतरिक जाँच तथा ऑडिटिग की जानी चाहिए। इसके लिए नाबार्ड द्वारा उचित दिशा निर्देश तैयार की जानी चाहिए। इन बैंकों की ऑडिटिग चार्टर्ड एकाउन्टेंट द्वारा की जानी चाहिए।

4.4 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की आवश्यकता

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य एवं आवश्यकता यह थी कि ये बैंक उन छोटे एवं सीमांत किसानों, कृषि श्रमिकों तथा कारीगरों को साख एवं अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराएगें जिनकी साख संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति सहकारी बैंक तथा व्यापारिक बैंक जैसी वर्तमान साख संस्थाएं पर्याप्त रूप से पूरी नहीं कर सकती है।

(i) सहकारी बैंक–जहाँ तक इन बैंकों की सहकारी साख संरचना का संबंध है, इनमें प्रबंधकीय कौशल, साख देने के बाद निरीक्षण और ऋण वसूली का अभाव पाया जाता है। ये बैंक इस स्थिति में भी नहीं हैं कि वे आवश्यक संसाधनों का संग्रहण कर सकें।

(ii) व्यापारिक बैंकः–ये बैंक अधिकांश रूप से शहरों में स्थित है और ये शहर–उन्मुख हैं, जहाँ तक कृषि साख संबंध है ये एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है। इसके लिए उन्हें अपनी विधियों, कार्य प्रणालियों, प्रशिक्षण एवं स्थिति विवरण को ग्रामीण वातावरण के अनुसार ढ़ालना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त ऊँचे वैतनिक ढ़ाँचे, कर्मचारी प्रतिरूप और उच्च स्थापना व्यय के कारण इनकी प्रचालन लागत भी ऊँची है। अतः इन परिस्थितियों में, व्यापारिक बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्ग के लिए सस्ती दर पर साख उपलब्ध नहीं करा सकते।

(iii) नई संस्था की आवश्यकताः– ग्रामीण आवश्यकताओं के अनुरूप एक ऐसी संस्था की स्थापना की आवश्यकता महसूस की गई जो ग्रामीण उन्मुख हो तथा जो ग्रामीण क्षेत्र में कमजोर वर्ग की साख आवश्यकता की पूर्ति कर सके तथा ऊपर वाली दोनों संस्थाओं के दोषों को दूर रखकर, उनके गुणों को मिला सके। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, राष्ट्रीयकृत बैंकों की सहायता के रूप में, किसानों तथा ग्रामीण उद्योगों को न केवल दीर्घकाल में ऋण प्रदान कर

सकें बल्कि ग्रामीण गृहस्थों की जमाओं को भी गतिशील बना सके। भारत में ये ग्रामीण वित्तीय संरचना का अटूट अंग बन सके।

अतएव ग्रामीण बैंक को वह संस्था स्वीकार किया गया जो ग्रामीण स्पर्श और स्थानीय भावना को जोड़ता है। यह ग्रामीण समस्याओं एवं आधुनिक व्यावसायिक संगठन से घनिष्ठता बनाए रखने का गुण रखता है। इसमें वाणिज्य संबंधी अनुशासन, साधनों को गतिशील बनााने की योग्यता तथा मुद्रा बाजार तक पहुँचने की क्षमता है। ये सभी गुण एक व्यापारिक बैंक के पास अवश्य होने चाहिए। संक्षेप में ग्रामीण बैकों की संस्था वह संस्था है, जो स्थानीय आधारिक ग्रामीण उन्मुख तथा वाणिज्यिक रूप से संगठित हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की विशेषताएँ

बेशक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक आधारिक रूप से अनुसूचित व्यापारिक बैंक हैं, परंतु इनमें निम्नलिखित आधार पर अंतर पाया जाता है।

(क) क्षेत्र

(i) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का क्षेत्र कुछ विशिष्ट क्षेत्रों तक ही सीमित है, जिसमें राज्य के एक या एक से अधिक जिले शामिल होते हैं।

(ii) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक केवल छोटे तथा सीमांत किसानों, ग्रामीण कारीगरों, कृषि श्रमिकों तथा उन अन्य व्यक्तियों को जिनके पास उत्पादक उद्देश्यों के लिए साधन कम हैं, प्रत्यक्ष ऋण एवं अग्रिम देते हैं।

(iii) किसी राज्य विशेष में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की उधार देने की दरें, सहकारी समितियों की प्रचलित उधार देने वाली दरों से अधिक नहीं है। प्रायोजक बैक और भारतीय रिजर्व बैंक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को कई अनुदान व रियायतें देते है, ताकि वे प्रभावपूर्ण रूप से कार्य कर सकें।

(ख) संगठन

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना प्रायोजक बैंक द्वारा की गई है जो सामान्यतया सार्वजनिक क्षेत्र का एक बैंक होता है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की विषय निर्वाचन समिति उन जिलों की पहचान करती है जिनको इस बैंक की आवश्यकता होती है। बाद में केंद्रीय सरकार राज्य सरकार तथा प्रायोजक बैंक की सलाह पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैक की स्थापना करती है। प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को उन स्थानीय सीमाओं के अंदर कार्य करना होता है जो केंद्रीय सरकार द्वारा निर्धारित कर दी जाती है। बैंक अपनी कोई भी शाखा अधिसूचित क्षेत्र की सीमाओं के भीतर स्थापित कर सकता है।

(ग) पूँजी

प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की अधिकृत पूँजी 5 करोड़ रु. है जिसे केंद्रीय सरकार बढ़ा या घटा सकती है परंतु यह इसकी 25 लाख प्रदत्त पूँजी से कम नहीं होनी चाहिए। इस सारी पूँजी में केंद्रीय सरकार का 50 प्रतिशत, राज्य सरकार का 15 प्रतिशत और प्रायोजक

बैंक का 35 प्रतिशत अभिदान होता है। वर्तमान में केंद्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा स्पॉन्सर बैंक के बीच अभिदान का फार्मूला 60:20:20 निश्चित कर दिया गया है। केंद्रीय बैंक का अभिदान द्वारा दिया जाता है।

(घ) प्रबंध

प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का प्रबंध बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स द्वारा किया जाता है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के मामलों तथा व्यवसाय का सामान्य अधीक्षण दिशा और प्रबंध बोर्ड ऑफ डायरेक्र्स के 9 सदस्यों के पास निहित होता है। केंद्रीय सरकार 3 डायरेक्टरों, राज्य सरकार 2 डायरेक्टरों तथा स्पॉन्सर बैंक 3 डायरेक्टर को नामित करता है। चेयरमैन सामान्यतया स्पॉन्सर बैक का ही एक अधिकारी होता है, परंतु इसकी नियुक्ति केंद्रीय सरकार द्वारा की जाती है। बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स को रिजर्व बैंक द्वारा जारी की गई दिशाओं व मार्ग दर्शन पर कार्य करना पड़ता है और व्यावसायिक सिद्धांतों के अनुसार कार्य करना होता है। राज्य स्तर पर, राज्य स्तरीय समन्वित समिति की स्थापना भी की गई है, ताकि विभिन्न क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों के दृष्टिकोण में समरूपता बनी रहे।

(ङ) प्रायोजक बैंक की ज़िम्मेदारियां

स्पॉन्सर बैंक उन सभी आर.आर.बी. की सहायता निम्नलिखित आधार पर करेगाः

(i) उसके शेयर पूँजी में अभिदान करना।

(ii) इनके कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना तथा

(iii) प्रथम पाँच वर्षों तथा बढ़ाई गई अवधि के दौरान प्रबंधकीय एवं वितीय सहायता का प्रावधान करना। स्पॉन्सर बैंकों को आर.आर.बी. की प्रगति को मानीटर करने का अधिकार प्राप्त है, आन्तरिक लेखा परीक्षण तथा छानबीन कर सकते है और जब ज़रूरत हो सुधारात्मक उपाय सुझा सकते हैं।

(च) स्रोत

आर.आर.बी. के मुख्य स्रोत हैं (i) शेयर पूँजी, (ii) जनता से प्राप्त जमाएं, (iii) स्पॉन्सर बैंक से लिया गया ऋण तथा (iv) नाबार्ड से पुनर्वित्ता।

भारतीय रिजर्व बैंक ने पुनर्वित्त सुविधाओं के लिए आर.आर.बी को सहकारी बैंकों के बराबर माना है अर्थात् 2 प्रतिशत बैंक की दर से नीचे। व्यापारिक बैंकों की भाँति आर.आर.बी को उपयुक्त या पात्र ऋणों के केवल घोषणा के बदले में तथा उनके द्वारा दिए अग्रिमों के अनुकूलन के लिए पात्र माना गया है। इसके अतिरिक्त आर.आर.बी को रिजर्व बैंक ने अनुसूचित बैंकों का स्तर दिया है। दिसंबर 2002 तक आर.आर.बी अपनी माँग तथा सर्वाधिक दायित्वों का 3 प्रतिशत नकद कोष के रूप में रख सकते हैं।

व्यापारिक बैंकों द्वारा दी गई दर के ऊपर आर.आर.बी को अपनी जमाओं के 1.5 प्रतिशत अतिरिक्त ब्याज की दर देने की अनुमति दे दी गई है। इन बैंकों की जमाओं का बीमा भी भारतीय जमा बीमा तथा साख गारण्टी निगम द्वारा किया गया है, यह बीमा जमाकर्ताओं के हितों को ध्यान में रख कर किया गया है।

कार्य

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको से निम्नलिखित कार्य करने की अपेक्षा की गई हैः–

(क) ऋण क्रियाओं से संबंधित कार्यः– क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा किए जाने वाले ये कार्य निम्नलिखित हैः

(i) ऋण एवं अग्रिम देनाः–ये बैंक छोटे तथा सीमांत किसानों एवं कृषि श्रमिकों को ऋण व अग्रिम देते हैं। इन किसानों तथा श्रमिकों को ऋण एवं अग्रिम उपलब्ध कराने का उद्देश्य उनको इस योग्य बनाना है कि वे निजी रूप से कृषि संबंधी क्रिया शुरू कर सकें। मुख्यतः ये क्रियाएँ हैं–भूमि, बीज, खाद आदि की खरीद करना। इन ऋणों के मिल जाने से ये लोग स्वतंत्र रूप से काम कर सकेंगे और बड़े–बड़े भू–स्वामियों तथा साहूकारों के बंधन से मुक्त हो सकेंगे। इससे उनकी आय कमाने की क्षमता में वृद्धि होगी और वे अपना जीवन स्तर ऊँचा करने में सक्षम हो सकेंगे।

(ii) भुगतान प्राप्तकर्ताः–ये ऋण एवं अग्रिम व्यक्तिगत रूप में अथवा समूहों में अथवा सहकारी समितियों को जिनमें कृषि बाजान समितियाँ, कृषि प्रक्रमण समितियाँ, प्राथमिक कृषि समितियाँ शामिल हैं, कृषि उद्देश्यों के लिए अथवा अन्य उद्देश्यों के लिए दिए जा सकते हैं। निजी व्यक्तियों अथवा समूहों को ये ऋण देने का उद्देश्य उनको उत्पादक क्रियाओं में ये राशि निवेशित करने की प्रेरणा देना है, ताकि उनके रोज़गार तथा आय में वृद्धि हो। सहकारी कृषि समितियाँ, इन ऋणों की प्राप्ति से इस योग्य हो जाएगी कि वे उत्तम प्रकार के बीज, खाद, उर्वरक आदि खरीद सकें और इस प्रकार अपने उत्पादन के स्तर में वृद्धि कर सकें। इन ऋणों की सहायता से कृषि विपणन समितियाँ सही समय, सही स्थान तथा सही कीमत पर कृषि उत्पाद को बेच सकेंगी।

(iii) साहूकारों से मुक्तिः–क्षेत्रीय ग्रामीण विकास बैंक ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में ये बैंक संस्थागत साख उपलब्ध कराने में वैकल्पिक एजेंसियों के रूप में कार्य करते हैं। समय व्यतीत होने के साथ–साथ इनका उद्देश्य ग्रामीण साहूकारों पर निर्भरता को भी समाप्त करना है। ये बैंक सहकारी साख समितियों के पूरक के रूप में भी कार्य करते हैं।

(iv) बैंकिग सेवाएं उपलब्ध करानाः–ये बैंक ग्रामीण लोगों के घरों पर बैंकिग सुविधाएँ उपलब्ध कराते है विशेष कर उन क्षेत्रों में जहाँ व्यापारिक बैंकों की कोई भी सेवा उपलब्ध नहीं है।

(v) जमाएँ स्वीकार करनाः–आर.आर.बी. ग्रामीण बचतों को एकत्रित करते हैं और उनकी जमाओं को स्वीकार करते हैं और फिर इन जमाओं को उत्पादक क्रियाओं में लगाते हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का यह कार्य गाँव के लोगों को अपनी आय में से बचत करने की प्रेरणा देता है इस प्रकार उनकी बचत करने की आदतों को प्रोत्साहन मिलता है।

(vi) साख की लागत कम करना:—जैसा कि हम जानते है कि गाँव के लोगों की आय कम होती है, इसलिए वे अकसर ग्रामीण साहूकारों से कई उद्देश्यों के लिए ऋण लेते हैं। ये साहूकार दिए गए ऋणों पर ब्याज की ऊँची दर लेते हैं और ब्याज की यह ऊँची दर ग्रामवासियों को इस प्रकार फंसा लेती है कि उनके लिए साहूकार के चंगुल से निकलना मुश्किल हो जाता है। इस कठिनाई से मुक्ति देने के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ब्याज की नीची दर लेते हैं और इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में ये साख की लागत को कम करने का प्रयास करते हैं।

(ख) गैर—कृषि क्रियाओं से संबंधित कार्य—क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक गैर—कृषि क्रियाओं से संबंधित निम्नलिखित कार्य करते है:

(i) कारीगरों को ऋण:—कारीगरों को भी ऋण उपलब्ध कराते हैं, ताकि वे कलात्मक व अन्य संबंधित वस्तुओं के उत्पादन से संबंधित उत्पादक क्रिया कर सकें। कारीगर तथा अन्य ऐसे श्रमिकों निर्धन व्यक्ति, बाज़ार में अपनी निर्मित कलात्मक वस्तुएं बेचकर ही वे अपना निर्वाह करते हैं। यदि इन व्यक्तियों को वितीय सहायता प्राप्त हो जाती है, तो ये लोग अपनी वस्तुओं के उत्पादन के लिए कच्चा माल व अन्य वांछित सामग्री खरीदने में समर्थ हो सकेंगे और इस प्रकार बेचे जाने वाले अपने सामान की गुणवत्ता में ये सुधार ला सकते हैं। अच्छी क्वालिटी वाली वस्तुओं के बिकने से इनकी आमदनी में वृद्धि होगी और इस प्रकार जीवन स्तर ऊँचा उठ सकता है।

(ii) छोटे उद्यमियों को ऋण:—गाँवों, उपनगरों तथा छोटे—छोटे कस्बों में छोटे उद्यमियों की एक बड़ी भारी संख्या है, ये लोग खुदरा व्यापार, वाणिज्य तथा अन्य कई उत्पादक क्रियाओं में लगे हुए है। इन छोटे उद्यमियों के पास भी अपनी व्यापारिक एवं उत्पादक क्रियाएँ चलाने के अपर्याप्त वित्तीय साधन हैं। आर.आर.बी. इन्हें ऋण व अन्य वित्तीय सुविधाएँ उपलब्ध कराते हैं, ताकि ये अपनी व्यापारिक क्रियायों में वृद्धि कर सकें। वे उद्यमी जिनके पास छोटे—छोटे या घरेलू उद्योग हैं, उन्हें कच्चा माल तथा मशीनरी के लिए कलपुर्जे खरीदने तथा अपने उद्योगों के रख—रखाव के लिए ये बैंक सहायता उपलब्ध कराते हैं। ये बैंक स्वरोजगार के लिए भी ऋण देते हैं, ताकि बेरोज़गार लोग कोई स्वयं का धन्धा शुरू करके अपने परिवारों का पालन—पोषण कर सकें।

(iii) उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करना:—आजकल आर.आर.बी. कमज़ोर वर्गों की उपभोग आवश्यकताओं को भी पूरा करने में लगे हैं, जिसमें विशिष्ट छोटे एवं सीमांत किसान, अनुसूचित वर्ग एवं अनुसूचित जनजातियाँ तथा अन्य ऋणकर्ता जो शिक्षा, चिकित्सा, व्ययों, पुनः सृजन आदि जैसे विशिष्ट उद्देश्यों के छोटे साधन हैं, शामिल हैं।

(ग) निर्धनता उन्मूलन:—हमारी पंचवर्षीय योजनाओं का उद्देश्य तथा सुधारों का अंतिम उद्देश्य समानान्तर आर्थिक विकास तथा निर्धनता को कम करना है। सभी पंचवर्षीय योजनाओं में यह प्रावधान है कि आर्थिक विकास की गति को तेज किया जाए और निर्धन परिवारों को लाभान्वित किया जाए, ग्रामीण विकास के लिए कार्यक्रम अपनाएं जाएं और इनके लिए जो भी उपाय अपनाएं जाए वे स्वयंमेव कार्य करते जाएं।

(घ) पुनः वित्त की सुविधाः–क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक नाबार्ड से अल्पकालीन तथा मध्यकालीन अग्रिमों के रूप में पुनःवित्त सुविधा प्राप्त करते हैं। नाबार्ड से प्राप्त पुनः वित्त का अधिकांश भाग अल्पकालीन अग्रिमों के संदर्भ में होता है।

अब क्षेत्रीय बैंक सोने के आभूषण, राष्ट्रीय बचत सर्टीफिकेट, इंदिरा विकास पत्र आदि की जमानत पर, उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं तथा अन्य उद्देश्यों के लिए ग्रामीण को ऋण व अग्रिम दरें लगे हैं। वे अपने ग्राहकों की तरफ से गारण्टी भी देने लगे हैं। अपने स्पांसरिंग बैंक के एजेण्ट के रूप में ये बैंक यात्री चैक भी दे सकते हैं और लॉकर सुविधा भी उपलब्ध करा सकते हैं। ये 25,000 रु. तथा एक लाख रु. तक के प्रति ग्राहक तथा प्रति ब्रांच चैक और ड्राफ्ट भी खरीद सकते हैं।

इन बैंकों को यह अनुमति भी दे दी गई है कि ये यू.टी.आई. द्वारा सूचीबद्ध, लाभ देने वाली सावधि संस्थाओं के फिक्स डिपाजिट राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा अन्य सार्वजनिक उद्यमों के बॉण्डों तथा ब्लु चीप कंपनियों के गैर परिवर्तनशील डिबेंचरों और अपने स्पांसरिंग बैंक के क्रेडिट, पोर्टफोलियो धनराशि निवेश कर सकते हैं। परंतु इसकी अधिकतम सीमा एक वर्ष के दौरान अपनी ताजा उधार दी गई राशि की 15 प्रतिशत होनी चाहिए। 8 जनवरी 1997 से इन बैंकों को यह अनुमति भी मिल गई कि ये निगम शेयरों तथा डिबेंचरों तथा मिचुअल फंडस की इकाइयों में निवेश कर सकते हैं, इनकी अधिकतम सीमा अपनी वेतन वृद्धि जमाओं की 5 प्रतिशत होनी चाहिए। अब ये द्वितीयक बाजार से भी निगमीय शेयर व डिबेंचर खरीद सकते हैं। ये बैंक अपनी उधार तथा जमा दरें भी निश्चित कर सकते हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का समामेलन

कृषि तथा संबद्ध कार्यों को ऋण प्रवाह पर बनी सलाहकार समिति (अध्यक्ष **प्रो. वी. एस. व्यास**) ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की परिचालानात्मक सक्षमता में सुधार करने तथा बड़े पैमाने की किफायतों का लाभ उठाने के लिए क्षेत्रीय बैंकों का ढाँचा फिर से तैयार करने की सिफारिश की। इसी क्रम में भारतीय रिजर्व बैंक ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को मज़बूत करने के लिए मौजूदा कानूनी ढाँचे के भीतर उपलब्ध विभिन्न विकल्पों की जाँच–पड़ताल करने के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर एक अतिरिक्त कार्यदल गठित किया। भारतीय वित्तीय प्रणाली में ऋण प्रदान करने के लिए एक प्रभावी उपकरण के रूप में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थिति पुनः निर्धारित करने के लिए भारत सरकार ने नाबार्ड, संबंधित राज्य सरकारों तथा प्रायोजक बैंकों से विचार–विमर्श के बाद सितंबर, 2005 में राज्य स्तरीय प्रायोजक बैंकवार क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों के समामेलन की दशा में पहल की थी, ताकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको में व्याप्त कमियों को दूर करके उन्हें सक्षम और लाभप्रद इकाइयां बनाया जा सके।

25 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का समामेलन जनवरी 2013 में 10 क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों में किया गया। जून 2013 में 67 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक थे, जो कि मार्च 2015 में 56 थे।

कुल संख्या 1– मार्च 2011 के अंत में कुल क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 82, जो कि मार्च 2013 में 64 हुए व मार्च 2014 में 57 नाबार्ड, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के लिए कार्यकारी संघ ने कहा कि जून 10, 2014 को, के क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ऋणों के बँटवारे में अपने लक्ष्यों को पूरा कर पाया है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या इस प्रकार हैः

- 196 (सितम्बर, 2005 तक की स्थिति)
- 104 (31 अगस्त, 2006 तक की स्थिति)
- 82 (31 मार्च, 2010 तक की स्थिति)
- 67 (जनवरी, 2013 तक की स्थिति)

महत्वपूर्ण तथ्य

1. सिक्किम और गोवा दो ऐसे राज्य है जहाँ कोई भी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित नहीं है।
2. केलकर कमेटी की सिफ़ारिश पर वर्ष 1987 के बाद से कोई भी नया आर.आर.बी स्थापित नहीं किया गया।
3. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को एक करके सशक्त बनाने के लिए भारत सरकार ने सितम्बर, 2005 से चरणबद्ध तरीके से इन बैंकों के विलय की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी, जो वर्तमान में भी जारी है।
4. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको का स्वामित्व भारत सरकार, संबधित राज्य सरकार तथा इसके प्रवर्तक बैंकों के पास होता है। इनकी निर्गत पूँजी का बंटवारा इन तीनों मे मध्य 50 प्रतिशत, 15 प्रतिशत तथा 35 प्रतिशत के अनुपात में है।
5. कुछ विशेष प्राथमिकता प्रदान गतिविधियों के वित्तीयकरण के लिए प्रोत्साहन देने के लिए इन आर आर बी को नाबार्ड तथा इनके प्रवर्तक बैंकों ने पुनर्वित्त की सुविधा प्रदान की है।

   नवीनतम तकनीकी प्रावधान

   9 अप्रैल 2012 को आर.बी..आई द्वारा जारी अधिसूचना के अंतर्गत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को धनराशियों के आनलाइन ट्रांसफर करने की सुविधा दी गई। अब इन बैंकों को केंद्रीयकृत भुगतान प्रणाली से जोड़ा गया है, जिससे यह बैंक रियल टाइम ग्रास सेटेलमेंट व नेशनल इलेक्ट्रानिंक फंड ट्रांसफर के जरिए धनराशियों को एक खाते से दूसरे खाते मे ट्रांसफर कर सकेंगे।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की समस्याएँ

छोटे किसानों, कारीगरों और कृषि श्रमिकों की बचतें एकत्रित करने में आर.आर.बी ने अहम भूमिका निभाई है। ग्रामीण क्षेत्रों में इन बैंकों के स्थापित हो जाने से लोगों में बैंक संबंधी

आदतें जागृत हो गई हैं। परंतु इस प्रगति के बावजूद भी आर.आर.बी. निम्नलिखित समस्याओं का सामना कर रहें है:

(क) संगठन से संबंधित समस्याएँः—चूँकि आर.आर.बी को कई एजेंसियों ने स्पॉन्सर किया है, इसलिए इनकी कार्यप्रणाली में एकरूपता का अभाव पाया जाता है। इससे राज्य सरकारों में पूरा समर्थन नहीं मिल पाया है और न ही स्पॉन्सर बैंकों से उचित मानीटरिंग हो पाया है। दूसरे, क्षेत्र प्रतिबंध भी इनके मार्ग में एक बाधा बन गया है। तीसरे आर.आर.बी. की सभी संस्थाओं के भीतर उचित प्रणाली एवं कार्य विधि का अभाव भी पाया जाता है। चौथे, आर. आर.बी के स्टॉफ की भर्ती एवं प्रशिक्षिण की ओर भी उचित ध्यान नहीं दिया गया है। पाँचवे, इन बैंकों का विकास आयोजित रहा है और इनकी कई शाखाएँ राज्य सरकारों के दबाव के अंदर खोली गई है। इन सभी कारणों के फलस्वरूप इनके आगे नियंत्रण एवं प्रबंध संबंधी कई समस्याएँ अभी बनी हुई हैं।

(ख) वसूली से संबंधित समस्याएँः—इन बैंकों की ऋण वसूली स्थिति सही नहीं है। इनकी वसूली अभी भी 51 प्रतिशत तथा 61 प्रतिशत के बीच है। अतएव इनके खड़े भुगतान 39 प्रतिशत तथा 49 प्रतिशत के बीच है। इनके ढाँचे विलम्बित या खड़े भुगतान के लिए जो कारण जिम्मेदार है, वे आंतरिक तथा बाहरी दोनों हैं। आंतरिक कारणः दोषपूर्ण ऋण नीतियां, कमजोर देखभाल, वसूली के प्रति रूचि का अभाव, विकास के साथ ऋण देने का कोई भी तालमेल होना तथा ऋणों के अंतिम प्रयोग में अनिश्चिता का होना। बाहरी कारणों में राजनैतिक हस्तक्षेप, ऋणों की वसूली में राज्य सरकारों को कम कानूनी तथा प्रशासनिक समर्थन आदि।

(ग) बढ़ती हानियों से संबंधित समस्याएंः—जैसा कि ऊपर बता दिया गया है कि 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में से 152 बैंक निरन्तर हानियाँ दिखला रहे हैं। इन बढ़ती हानियों के मुख्य कारण निम्नलिखित हैः (i) ये बैंक अधिकतर ऋण कमजोर वर्गो को देते है, ऋणों पर इस वर्ग से प्राप्त ब्याज बैंकिग प्रणाली में सबसे कम है। (ii) बड़ी संख्या में खातों को बनाए रखने में बहुत खर्च आता है जो हानियों को और भी बढ़ा देता है। (iii) वर्ष प्रतिवर्ष इन बैंकों की शाखाओं के खोलने में ऊपरी लागतों में बहुत वृद्धि होती है जबकि इसके अनुपात में आय बहुत कम प्राप्त होती है। (iv) प्रशिक्षित एवं सक्षम स्टॉफ की उपलब्धता का न होना भी इनकी एक बड़ी समस्या है। (v) इन बैंकों की कई शाखाओं की आर्थिक स्थिति आशाजनक है।

(घ) प्रबंध से संबंधित समस्याएँः—चूँकि सभी आर.आर.बी. संस्थाएँ जिला स्तर पर स्थापित की गई हैं, स्पॉन्सर बैंकों ने इनकी देखभाल के लिए मध्यवर्गीय प्रबंध स्टॉफ की नियुक्ति की है। ये प्रतिनियुक्त स्टॉफ सदस्य इस अवस्था में नहीं है कि नई परिस्थिति में वे कोई स्वतंत्र निर्णय ले सकें। इसके अतिरिक्त आर.आर.बी. के बोर्ड ऑफ डायेरक्टरों की मींटिग भी नियमित रूप से नहीं होती और अशासकीय डायरेक्टरों की एक बड़ी संख्या इन बैंकों की कार्य प्रणाली में कोई रूचि नहीं दिखाती। इसमे साथ—साथ कई ऐसी समस्याएँ भी है जो

इन बैंकों के बहु–एजेंसी नियंत्रण के कारण उत्पन्न होती है और इनकी कार्यप्रणाली भी सभी राज्यों/जिलों मे एक समान नहीं है।

(ङ) स्पॉन्सरिंग बैंकों की शाखाएँः–आर.आर.बी. को स्पॉन्सर करने वाले कई बैंकों की शाखाएं उस क्षेत्र में है जहाँ कि आर.आर.बी. अपना प्रचालन कर रहे हैं इससे कई विषमताएं उदय हुई है और इनके नियत्रंण एवं प्रशासन पर होने वाले खर्च से बचा नहीं जा सका है।

(च) दोषपूर्ण व्याप्ति क्षेत्रः–इन क्षेत्रों का व्याप्ति क्षेत्र एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न है। कई जिलों में नकद आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इन बैंकों तालुका/या ब्लॉक मुख्यालय पर शाखाओं में तालमेल या जुड़ाव नहीं है। कई स्थानों पर इनकी शाखाएं खोलने के लिए सही जगह नही मिल पाई है।

(छ) दोषपूर्ण भर्ती नीतिः–ऐसी अपेक्षा की गई है कि ये बैंक अपने स्टॉफ की स्थानीय भर्ती कर लेगें। परंतु इसमें लगे स्टॉफ की भर्ती बैंकिग सर्विस रिक्यूटमैंट बोर्ड द्वारा की जा रही है जिसका परिणाम यह हो रहा है कि ग्रामीण बैंकों के प्रचालन क्षेत्र से बाहर के लोग भी इन बैंकों में रोज़गार के लिए योग्य है। इससे निश्चित रूप से इन बैंकों की कार्यप्रणाली प्रभावित हुई।

(ज) मानदण्डों की कठोरताः–इन बैंकों में लाभग्राहियों के चुनाव के लिए निश्चित किए गए मानदण्ड बहुत कठोर है और संपूर्ण भारत की आय स्तर पर आधारित है। इतना ही नहीं लोगों के व्यवसाय एवं आर्थिक स्तर भी, एक ही राज्य में, एक ही जिले में व्यापक रूप से भिन्न हैं। जरा सोचिए, पंजाब में उपलब्ध निर्धनता रेखा, उड़ीसा जैसे पिछड़े राज्य पर कैसे लागू की जा सकती है? इसका परिणाम यह हुआ कि कई उपयुक्त या योग्य व्यक्तियों को छोड़ दिया गया है और उनकी साख आवश्यकताएं पूरी नहीं की गई है।

(झ) साधनों की कमीः–गाँव के सभी ज़रूरतमन्द लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन बैंकों के पास पर्याप्त साधनों का अभाव है। इनका पूँजी आधार भी कमजोर है। राज्य सरकारों ने भी अपने शेयरों का पूरा भाग इन बैंकों को नहीं दिया है। इसके परिणामस्वरूप इन बैंकों को निरंतर हानि सहनी पड़ी है और इनका पूँजी आधार भी क्षीण हो गया है।

(ञ) जमाएं एकत्रित करने में कठिनाईः–चूँकि ये वर्ग समाज के कमज़ोर वर्ग को साख सुविधाएँ उपलब्ध कराते है, इन्हें मध्यम वर्ग तथा ग्रामीण उच्च वर्ग से जमाएँ अपनी ओर आकर्षित करना कठिन हो रहा है। ग्रामीण उच्च वर्ग व्यापारिक बैंकों में अपनी बचते जमा करना अधिक पसंद करते हैं और इन्हें व्यापारिक बैंकों की ऋण सुविधाएँ भी प्राप्त होती हो जाती हैं।

(ट) दोषपूर्ण साख नीतिः–इन बैंकों ने केवल फसल ऋणों पर तथा राज्य सरकारों द्वारा चलाई गई योजनाओं पर ही अपना ध्यान केंद्रित किया है। कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगों को सही महत्व नहीं दिया गया है। इसी भाँति ग्रामीण कारीगर/हस्तकार और स्वरोज़गार व्यक्तियों को भी इन बैंकों से कोई विशेष सहायता नहीं हुई है।

(ठ) ऋण लेन–देन की ऊँची लागतें:–चूँकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में वेतन का पैमाना व्यापारिक बैंकों की भांति ही है, इसलिए इनकी ऋण देन–लेन की लागत बहुत ऊँची है, और कई बार यह लागत व्यापारिक बैंक की ग्रामीण शाखाओं से भी अधिक हो जाती है।

सुधार के लिए सुझाव

आर.आर.बी द्वारा सामना की जाने वाली उपरोक्त सभी समस्याएँ सही हैं। इन समस्याओं के समाधान की आवश्यकता है, अतएव इस संदर्भ में निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

(क) स्वामित्व तथा नियंत्रण:–स्पांसर बैंकों के विस्तार के रूप में कार्य करने की बजाए, इन्हें एक अलग–थलग इकाई के रूप में स्वतंत्र रूप से कार्य करना चाहिए। वर्तमान 50:35:15 पूँजी अंशदान को हल करने के लिए पूँजी निवेश की पुनः संरचना की जाए। इन बैंकों को विशेष पदनाम अस्तित्व तथा भूमिका दी जाए, ताकि ये अपनी मूल संस्था से अलग हट कर काम कर सकें। श्रेणीबद्धता स्तरों की संख्या से इन्हें राज्य स्तर समन्वय तथा रिजर्व बैंक केंद्रीय सरकार स्तरीय नियमन तथा नियत्रंण तक घटाया जाए।

उच्च स्तर पर औपचारिक विनियमितता उपाय अपनाए जा सकते है, जबकि कार्यसंबंधी नीतियों का राज्यनीतियों, प्राथमिकताओं, आवश्यकताओं तथा विशेष परिस्थितियों के अनुरूप राज्य स्तर पर निर्माण किया जा सकता है।

इन बैंकों को अपनी प्रचालन नीति तथा कार्यप्रणाली में पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। इनकी कार्यप्रणाली में किसी अन्य एजेंसी का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, ऐसे स्वतंत्र वातावरण में ये बैंक अपने कार्य की दिशा का निर्णय ले सकते हैं और सामान्य प्रबंध का संचालन सही प्रकार से कर सकते हैं। इस प्रबंधन में यदि कोई मार्गदर्शक नीति अथवा अन्य बैंकिग विनियमन इसके समक्ष आता है, तो ये बैंक इसे सहर्ष स्वीकार कर सकते हैं।

(ख) कोषों का प्रबंध:–इन बैंकों के लिए कठोर रूप से मार्गदर्शन किया जाए कि वे अपने कोषों का उपयुक्त उपयोग कहाँ करें, इनका प्रचालन का विस्तृत क्षेत्र क्या हो तथा किस प्रकार की ऋण सेवाएँ ये प्रदान करें। इन बैंकों का लक्ष्य ग्रामीण सुधार होना चाहिए। इस संदर्भ में यदि ये बैंक एक लोचशील दिशानिर्देश अपनाएँ, तो इससे अच्छे परिणाम मिल सकते है। इनको अपनी नीतियों का निर्माण इस विधि से अपनाना चाहिए कि जिससे निम्नलिखित उद्देश्य यथाशीघ्र प्राप्त हो सकें। लोगों की जमाओं का एकत्रीकरण करना स्व–रोज़गार परियोजना को संगठित करने के लिए स्व–सहायता समूहों को समर्थन देना, निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए वित्त प्रबंध करना, विशेष क्षेत्रों के लिए उपयुक्त प्रमुख ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देना तथा बेरोजगारी, निर्धनता, निरक्षरता एवं अन्य ऐसी सामाजिक आर्थिक बुराइयों के चंगुल से बचने के लिए ब्लॉक/ग्रामीण स्तर पर जीवनक्षम सामाजिक आर्थिक क्रियाओं को शुरू करना।

(ग) लक्ष्य तथा प्रयोजन:–साख/जमा अनुपात 75 प्रतिशत के आस–पास अवश्य बना रहना चाहिए। प्राथमिक क्षेत्र अग्रिम लक्ष्य किसी भी कीमत पर पूरा किया जाना चाहिए। लगभग

सभी अग्रिम ग्रामीण क्षेत्र में जाने चाहिए। ग्रामीण कोषों को किसी भी हालत में अन्य क्षेत्रों में नहीं जाने देना चाहिए।

ऋणों की अवधि, ज़ोखिम तत्व, प्राथमिकता, सरकारी स्कीमों आधारित विभिन्न प्रकार के सभी ऋणों की (जैसे फसल ऋण, ग्रामीण गृह निर्माण ऋण, लघु उद्योग, कुटीर उद्योग व अन्य) ब्याज की दर लोचशील होनी चाहिए।

निर्धन तथा मार्जिन किसानों के कल्याण के लिए कार्य करने वाले इन बैंकों का उद्देश्य केवल लाभ कमाना नहीं होना चाहिए। इन्हें सेवा की भावना से कार्य करना चाहिए। वित्तीय सुधारों के बाद व्यापारिक बैंक सामाजिक बैंक की बजाए लाभ बैंकों में बदल गए हैं और इस बदलाव के क्रम में प्राथमिक क्षेत्र को बीच में छोड़ दिया गया है। सार्वजनिक क्षेत्रीय बैंक की भूमिका पर अब प्रश्न यह उठता है कि प्राथमिक क्षेत्र (ग्रामीण कृषि, कुटीर उद्योग आदि) अब किसका बच्चा है, अर्थात् उसका ध्यान रखने वाला कौन है। इसका यह अर्थ नहीं कि उधार देने के सिद्धांतों को हवा में फेंक दिया जाए। एक उचित लागत–परिणाम–लाभ विश्लेषण की आवश्यकता है। कार्य प्रणाली में मितव्ययित तथा कुशलता को बलि पर नहीं चढ़ा देना चाहिए।

(घ) व्यापित क्षेत्र तथा शाखा विस्तारः–भारत में लगभग 5 लाख गाँव है। अनुसूचित बैकों ने तो अपना ध्यान शहरी तथा मैट्रों क्षेत्रों में केंद्रित कर लिया है, जिसके फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों मे उनकी कई शाखाएं प्रायः बंद हो चुकी है, सहकारिता को छोड़कर अब केवल एक मात्र विकल्प क्षेत्रीय ग्राामीण बैंक की कार्य प्रणाली ही है। इसलिए आवश्यक है कि सभी गाँवों में पंचायतें, ब्लाक तथा तालुका इन बैंकों के अधीन आ गए। क्षेत्रीय आधार पर स्थित इसकी शाखाओं का एक निकट जाल अप्रत्याशित प्रतिस्पर्धा, आत्मसंतुष्टि तथा प्रयासों के दोहरेपन को जोड़ सकता है और समक्षता को प्रोत्साहित कर सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि देश के संपूर्ण ग्रामीण क्षेत्र को व्याप्ति में लाने के लिए इन बैंकों की अधिक से अधिक शाखाएँ खोली जाए।

(ङ) कर्मचारी तथा प्रशिक्षणः–इन ग्रामीण–परक संस्थाओं में कर्मचारियों की नियुक्ति एवं प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रत्येक शाखा के कर्मचारियों मे कम से कम एक ऐसा व्यक्ति अवश्य होना चाहिए जो उसी ग्रामीण इलाके का हो, ऐसा होने से बैंक मैनेजर स्थानीय दशाओं तथा लोगों के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर सकता है। सामान्यतया ग्रामीण समुदाय में से इन बैंकों में लोगों/कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए ताकि बैक में काम करने वाले अन्य कार्यकर्ता अपने आपको ग्रामीण वातावरण से बाहर न महसूस करें। इसके अतिरिक्त ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति अपने आप को इन बैंकों में प्रभावी सिद्ध कर सकते है और अच्छी प्रकार से अपनी सेवाएं प्रदान कर सकते है। बेशक यह एक कोरी आशा हैं, परंतु फिर भी इन बैंकों में ग्रामीण शिक्षित युवकों के लिए 5 लाख रोज़गार सृजित किए जा सकते हैं।

इनके कर्मचारियों को निरंतरता के आधार पर प्रभावपूर्ण प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि इन कर्मचारियों की क्रियाएँ ठीक दिशा की ओर अग्रसर हो सकें। उमंग व जोश लाने

तथा लक्ष्य प्राप्ति के लिए इन कर्मचारियों को मौद्रिक तथा गैर–मौद्रिक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

(च) कृषि–आधारित उद्योगों का विकासः–सूखे के कारण फसलों के फेल होने से विश्वीकरण के कारण छोटे, कुटीर तथा लघु उद्योगों के बीमार होने से, आधारिक संरचना के अभाव आदि के कारण ग्रामीण क्षेत्रों मे बेरोज़गारी तथा अल्प रोज़गार काफ़ी मात्रा में व्याप्त है। जब तक कृषि आधारित उद्योग विकसित नहीं किए जाते बैंकों के लिए इन ग्रामीण क्षेत्रों मे कम करना थोड़ा कठिन–सा हो गया है।

इन क्षेत्रों में कृषि आधारित औद्योगिक इकाइयों की स्थापना से बैकों को भी लाभ होगा तथा क्षेत्र के आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। ग्रामीण क्षेत्र में औद्योगिकीकरण के विस्तार से, आर.आर.बी अपने प्रचालन तथा कार्यविधि में वृद्धि कर सकते हैं। अतएव किसी विशेष इलाके में उपयुक्त औद्योगिक इकाइयों की स्थापना एवं विकास के फलस्वरूप आर. आर.बीं की कार्यप्रणाली अधिक कुशल हो सकेगी।

(छ) ग्रामीण वित्त में नेताः–ग्रामीण वित्त में क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की हैसियत एक बाज़ार नेता के रूप मे होनी चाहिए। अन्य खिलाड़ियों के प्रवेश को वहाँ प्रतिबंधित किया जाए। दीर्घकालीन ऋण आवश्यकताओं, पूँजी निवेश, गृह निर्माण आदि के अतिरिक्त जनसंख्या की अन्य सभी ज़रूरतों की पूर्ति आर.आर.बी द्वारा की जानी चाहिए। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया कोषों के अतिरिक्त प्रवाह द्वारा सहायता प्रदान कर सकता है।

(ज) उच्च पूँजीः–आर.आर.बी. को व्यापार की अतिरिक्त मात्रा को पूरा करने के लिए अपनी पूँजी को बढ़ाना होगा, ताकि जनसंख्या के कम से कम 50 प्रतिशत की माँग को पूरा किया जा सके। विशाल ग्रामीण जनसंख्या को कवर करने के लिए इन बैंकों को लगभग 1 लाख शाखाएँ खोलनी होगी, बेशक वे सरल पैमाने पर ही हो। इसके अनुरूप सरकारी योगदान अथवा/और सार्वजनिक इशू द्वारा, इन बैंकों को अपने पूँजी आधार को बढ़ाना होगा। विभिन्न एजेंसियों द्वारा पुनर्वित्त सुविधा, इस संदर्भ में, सुगम और उपयोगी होगी।

(झ) स्पांसर बैंक के लिए सुझावः–स्पांसर बैंक को निम्नलिखित कदम उठाने चाहिए। (i) उन्हें व्यापारिक बैंकों की ग्रामीण शाखाओं को बंद कर देना चाहिए और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को दे देना चाहिए; (ii) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को परामर्श देकर उनके लिए कोषों के प्रबंध मे इनके द्वारा अधिक प्रभावी योगदान देना चाहिए, ऋण योजनाओं के मूल्यांकन में साख के उपयोग में तथा उनके आंतरिक ऑडिट के लिए उपयुक्त प्रशिक्षित स्टॉफ उपलब्ध कराने में पूर्ण रूप से संभव सहायता देनी चाहिए।(iii) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के पुनः वित पर ब्याज को कम दर देनी चाहिए; (iv) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की जमाओं का निवेश दीर्घकालीन सरकारी प्रतिभूतियों मे करें; (v) इन बैकों के स्टॉफ के प्रशिक्षण के लिए सुविधाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

(ञ) केंद्रीय सरकार के लिए सुझावः–केंद्रीय सरकार/भारतीय रिजर्व बैंक तथा नाबार्ड द्वारा निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिए; (i) अपने स्टॉफ का वेतन पैमाना तथा काम के घंटे

निश्चित करने में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को इन द्वारा पर्याप्त स्वतंत्रता दी जानी चाहिए; (ii) नए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक उन क्षेत्रों में खोले जाने चाहिए जहाँ पिछड़े वर्गो की जनसंख्या अधिक हो;(iii) इन बैंकों को स्पान्सर बैंकों द्वारा नहीं बल्कि अपने स्टॉफ की स्वयं भर्ती करने की अनुमति देनी चाहिए, ताकि स्थानीय व्यक्ति जो स्थानीय स्थिति तथा समस्याओं से परिचित है, इनकी सहायता कर सकें।

(ट) राज्य सरकारों के लिए सुझावः—राज्य सरकारों द्वारा इस दिशा में निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिए; (i) राज्य सरकारों को बकाया राशि वसूली में इन बैंकों की सहायता करनी चाहिए; (ii) इन्हें या तो प्राथमिक कृषि साख समितियों को पुनः संगठित करना चाहिए अथवा नई सेवा समितियाँ स्थापित करनी चाहिए ताकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को बड़े पैमाने पर उत्पादक क्रियाएँ शुरू करने के लिए साख उपलब्ध हो सके और सेवा लागत कम हो सके।

(ठ) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के लिए सुझावः—अपनी कार्य प्रणाली को सुधारने के लिए क्षेत्रीय बैंकों को निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिएः

(i) इन्हें गैर—लक्ष्य समूहों को भी साख सुविधाएँ उपलब्ध करानी चाहिए ताकि उनका लाभ—मार्जिन बढ़ सकें। परंतु ऐसी साख सुविधाएँ कुल बकाया अग्रिम की 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। (ii) पर्याप्त शिक्षित एवं प्रशिक्षित स्टॉफ के साथ इन बैंकों को अपने स्वयं की वसूली प्रणाली अपनानी चाहिए; (iii) इनको वह रणनीति खोजनी चाहिए कि जिसके द्वारा ग्रामवासियों में बैंक संबंधी आदतें पैदा हो; (iv) ऋण देने के साथ—साथ इन्हें अपनी क्रियाओं में वृद्धि करनी चाहिए जैसे ग्रामीण परामर्श सेवा, साख कार्य को थोड़ा—थोड़ा करके कई बार में पूरा करना, रोज़गार के अधिक अवसर पैदा करना आदि।

ग्रामीण क्षेत्रों में चूँकि संस्थागत वित्त अपर्याप्त है, साहूकार अपना प्रभुत्व जमाए हुए है और ग्रामीण जनता ऋण और बंधवा की कड़ियों में जकड़ी हुई है। व्यापारिक बैंक अपनी ग्रामीण शाखाओं को बन्द करते जा रहे हैं, ग्रामीण निर्धन की सेवा की बजाए लाभदायकता पर वे अपना ध्यान अधिक केंद्रित कर रहें हैं। इस संदर्भ में सरकारी संस्थाओं द्वारा व्यवस्थित रूप में गाँवों में उधार देना शुरू करना चाहिए, ताकि ग्रामीण लोगों को ऋण और निर्धनता से मुक्ति मिल सके और वे अपने लिए रोज़गार प्राप्त कर सके तथा अपनी उत्पादकता सुधार सकें।

वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्र के लिए अनेक स्कीमें व संगठन है, जो उनकी सेवा कर सकते है। आवश्यकता इस बात की है कि क्षेत्र की संपूर्ण संवृद्धि के लिए इन सभी संस्थाओं, नीतियों और परियोजनाओं में समन्वय की आवश्यकता है। एक लक्ष्य—परक समयबद्ध, वास्तविक तथा क्षेत्रीय पहुँच की अत्यन्त आवश्यकता है। इस संदर्भ आर.आर.बी. ग्रामीण क्षेत्रों में कोषों में गतिशीलता लाने के लिए अत्यन्त उपयुक्त है और क्षेत्रीय विकास में वे अपना पूरा योगदान दे सकते है।

सन 1986 में केलकर वर्किंग ग्रुप ने अपनी रिपोर्ट मे इस बात को कहा कि जो कार्य आर.आर.बी. को सौपें गए है, ये बैंक उनके लिए बिल्कुल उपयुक्त है। अतएव आर.आर.बी. के साधनों में वृद्धि करके, इनके ऋण देने वाली प्रक्रिया को युक्तिकरण करके, इनके स्टॉफ को उचित प्रशिक्षण देकर तथा राज्य सरकारों से सहयोग प्राप्त करके इनकों नया जीवन देने की अत्यन्त आवश्यकता है।

टी.टी. वैल्युधन तथा **वी. शंकरनारायण** का कहना है कि, "क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक केवल ग्रामीण साख एजेंसियों ही नहीं है ये इससे अधिक हैं, ये बैंक प्रेरित ग्रामीण विकास का एक फलदायक अभ्यास है।"

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की पुनः संरचना

आर.आर.बी. की हानि की समस्या को हल करने के लिए तथा इनकी क्षमता में सुधार लाने के लिए हाल ही के वर्षों में इनके प्रचालन को पुनः संरचित करने के लिए तथा इनमें नई पूँजी डालने के लिए प्रयास किए गए है। भारतीय रिजर्व बैंक ने आर.आर.बी. की पुनःसंरचना के लिए उपाय सुझाने के लिए **एम.सी. भंडारी समिति** की नियुक्ति की थी। भण्डारी समिति की सिफारिशों पर 1994–95 में 49 क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को पुनःसंरचना एवं पुनर्जीवन के लिए लिया गया। आर.आर.बी. की प्रबंधकीय, प्रचालन संबंधी तथा कार्य प्रणाली से संबंधित संरचना के लिए नाबार्ड की विकासीय क्रिया योजनाओं द्वारा कार्य शुरू किया गया है और आवर्ती योजना के आधार पर पाँच वर्षों की समय अवधि के लिए इनके तुलन पत्रों को शुद्ध किया जाएगा।

दिसंबर 1995 में नाबार्ड द्वारा नियुक्त बासु समिति ने फेज ii के अंतर्गत 68 आर. आर.बी की व्यापक पुनः संरचना के चयन की सिफारिश की। इस संदर्भ में ब्याज दरों, शाखाओं के पुनः आवंटन, साख आवंटन, साख की दिशा और पूँजी के अनुप्रेरण के साथ–साथ मानवशक्ति नीति की प्रमुख से पहल की गई। भारत सरकार ने 1994–98 तथा 1998–99 के बीच आर.आर.बी. के पुनः पूँजीकरण के लिए 1867.5 करोड़ रु. की राशि विमोचित की।

इसके अतिरिक्त 1998–99 में रु. 305.3 करोड़ का अतिरिक्त इक्यूटी समर्थन भी दिया गया। 1988–99 में 196 आर.आर.बी. में से 175 आर.आर.बी. पूर्णतया या आंशिक रूप से पुनःपूँजीकृत किए जा चुके थे जबकि 2 आर.आर.बी को किसी समर्थन की आवश्कता नहीं थी। केवल 19 आर.आर.बी. पूँजीकरण कार्यक्रम परिधि के बाहर थे। इसके अतिरिक्त आर. आर.बी. की निर्गमित शेयर पूँजी की राशि भी रु. 75 लाख से बढ़ा कर रु. 1 करोड़ कर दी गई। उत्पादकता, नकदी प्रबंध अग्रिम पोर्टफोलियों तथा वसूली निष्पादन में नाबार्ड इन बैंकों की कार्यप्रणाली को मानीटर करता हैं। नाबार्ड ने आर.आर.बी. के लिए निम्नलिखित अल्पकालीन उपायों का भी एक पैकेज तैयार किया है।

(i) उनको अपने सेवा क्षेत्र आभारों से मुक्त कर दिया गया है।

(ii) उन्हें अपने गैर–लक्षीय समूह वित्त को भी 40 प्रतिशत से 60 प्रतिशत तक बढ़ाने की अनुमति दे दी गई है।

(iii) उनको अपनी कुछ हानि देने वाली शाखाओं को कृषि उत्पाद केंद्रों, मार्केट यार्ड, मण्डी आदि में आंबटित करने की अनुमति दे दी गई है।

(iv) उन्हें विस्तार पटल के खोलने की भी स्वतंत्रता दे दी गई है।

(v) गैर–कृषि क्रियाओं को पूरा करने के लिए उन्हें इस बात की अनुमति भी दे दी गई है कि वे अपनी क्रियाओं की रेंज को बढ़ाए तथा गहन करें।

आशा की जाती है कि आर.आर.बी. की इस पुनः संरचना से ये बैंक अब अधिक कार्यकुशलता से कार्य कर सकेंगे।

राव कमेटी सिफारिशें

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कार्य प्रणाली के विभिन्न पक्षों की समीक्षा करने तथा वित्तीय क्षेत्र में सुधारों की दृष्टि से इन बैकों द्वारा प्रभावपूर्ण ढ़ंग से कार्य के लिए सिफारिशें करने की दृष्टि से सरकार ने जुलाई 2001 में **श्री एम.वी.एस. चालापाथी राव,** नाबार्ड के प्रबंध निर्देशकों की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की, ताकि वह क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976 में सुधार करने के लिए सुझाव दें। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट जून 2002 में दी, इस रिपोर्ट में निम्नलिखित सुझाव की गईः

(i) पूंजी संरचना तथा स्वामित्व प्रतिमान में परिवर्तन किया जाए।

(ii) स्पांसर बैंकों की भूमिका को बढ़ाया जाए।

(iii) सामाजिक आर्थिक जोन आधार पर मिश्रण द्वारा संरचनात्मक एकीकरण किया जाए।

(iv) थोड़े–थोड़े रूप में पूँजी पर्याप्त मानदंडों का समावेश किया जाए।

(v) इन्हें अतिरिक्त पर्यवेक्षी अधिकार प्रदान की जाए।

(vi) कंप्यूटर आधारित प्रबंध प्रणाली अपनाई जाएं।

(vii) परिसंपत्ति दायित्व तथा जोखिम प्रबंध प्रणालियों को समावेश किया जाए।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा उठाए गए सुधार के उपाय

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में ऋण प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण उपकरण बनाने के लिए रिजर्व बैंक उन्हें मज़बूत करने तथा उनके कार्य निष्पादन में सुधार लाने के लिए समय–समय पर उपाय करता रहा है। ग्रामीण क्षेत्र के विकास में भागीदार के रूप में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भूमिका निर्धारित करने में प्रायोजक बैंकों की निर्णायक भूमिका पर विचार करते हुए तथा प्रायोजक बैंक और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के बीच सहक्रिया को बढ़ावा देने के लिए रिजर्व बैंक को सूचित किया था कि वे अपने प्रायोजित क्षेत्रीय बैंकों के मानव संसाधन, सूचना प्रौद्यिगिकी तथा परिचालन से जुड़े मुद्दों पर कदम उठाएं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के कार्य निष्पादन में सुधार लाने तथा निर्णय लेने में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के निदेशक मंडल को और शक्तियाँ तथा लचीलापन प्रदान करने के लिए,

रिजर्व बैंक के सितंबर, 2006 में परिचालनात्मक सक्षमता के लिए क्षेत्रीय बैंकों के निदेशक मंडलों के सशक्तीकरण पर एक कार्यबल का गठन किया था। इस कार्यबल का गठन ऐसे क्षेत्रों पर विचार करने और सुझाव देने के लिए किया गया था, जहाँ निदेशक मंडलों को विशेष रूप से निवेश, व्यवसाय विकास तथा कर्मचारियों जैसे कर्मचारी संख्या का निर्धारण, नई भर्ती, पदोन्नति आदि के मामलों में और स्वायतता दी जा सकें। इस कार्यबल ने 31 जनवरी, 2007 को प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के परिचालनात्मक लचीलेपन के संबंध में अनेक सिफ़ारिशें कीं, उनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया गया है:

(i) चयनित आधार पर निदेशक मंडलों में निदेशकों की संख्या बढ़ाकर 15 की जाए।

(ii) क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों के अध्यक्ष का चयन अर्हता प्राप्त अधिकारियों के पैनल से गुणवता के आधार पर किया जाए।

(iii) निदेशक मंडल के सदस्यों का न्यूनतम काल 2 वर्ष का हो।

(iv) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में निम्नलिखित समितियाँ होनी चाहिए: (1) जोखिम प्रबंधन समिति, (2) प्रबंधन समिति, (3) निवेश, मानव संसाधन तथा सूचना प्रौद्योगिकी समिति तथा (4) लेखा परीक्षा समिति।

(v) शाखाओं के वर्गीकरण, कर्मचारियों से संबंधित मानदंड तथा पदोन्नति नीति एवं अन्य मानव संसाधन से जुड़े मामलों से संबंधित विषयों का अध्ययन इस प्रयोजन से रिजर्व बैंक/भारत सरकार द्वारा गठित समिति/कार्यबल द्वारा गहराई से किया जाए।

कार्यबल की कुछ सिफ़ारिशें, कार्यन्वित की जा चुकी हैं और शेष विचाराधीन हैं।

4.5 अंतरराष्ट्रीय बैंक

अंतर्राष्ट्रीय बैंकिंग एक प्रकार का बैंकिंग है जिसमें राष्ट्रीय सीमा पार शाखाएं हैं। यह राष्ट्रीय बैंक के समान है लेकिन यह अंतरराष्ट्रीय ग्राहकों को भी एक ही सेवा प्रदान करता है। इसमें व्यक्तियों और व्यवसायों जैसे दोनों प्रकार के क्लाइंट शामिल हैं। अंतरराष्ट्रीय बैंकों द्वारा उपलब्ध सेवाएँ निम्नलिखित हैं:

1) व्यापार वित्त व्यवस्था की व्यवस्था

एक अंतरराष्ट्रीय बैंक उन व्यापारियों के लिए वित्त व्यवस्था करता है जो विदेशी देश से निपटना चाहते हैं।

2) विदेशी मुद्रा की व्यवस्था करने के लिए

अंतरराष्ट्रीय बैंक द्वारा प्रदान की जाने वाली मूल सेवाएं आयात-निर्यात उद्देश्य के लिए एक विदेशी मुद्रा व्यवस्था की व्यवस्था करना है।

3) धन को संभालने के लिए

अंतरराष्ट्रीय बैंक कम कीमत के स्तर पर प्रतिभूतियों को खरीदकर धनराशि को संभालने और मूल्य स्तर बढ़ने पर इसे बेचते हैं।

4) निवेश बैंकिंग सेवाओं की पेशकश करें

यह शेयरों के अंडरराइटिंग, निवेश के लिए वित्तीय निर्णयों पर हस्ताक्षर करके एक निवेश बैंकिंग सेवाएं भी प्रदान करता है।

अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग के प्रकार

1) संवाददाता बैंक

संवाददाता बैंकों में अलग-अलग देशों में अलग-अलग बैंकों के बीच संबंध शामिल हैं। इस प्रकार का बैंक आम तौर पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उनके अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग के लिए उपयोग किया जाता है। इस प्रकार के बैंक छोटे आकार में हैं और उन ग्राहकों को सेवा प्रदान करते हैं जो अपने देश से बाहर हैं।

2) एज अधिनियम बैंक

एज अधिनियम बैंक 19 19 के संवैधानिक संशोधन पर आधारित हैं। वे संशोधन के तहत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार संचालित करेंगे।

3) ऑफ शोर बैंकिंग सेंटर

यह एक प्रकार का बैंकिंग क्षेत्र है जो विदेशी खातों की अनुमति देता है। ऑफशोर बैंकिंग उस विशेष देश के बैंकिंग विनियमन से मुक्त है। यह सभी प्रकार के उत्पादों और सेवाओं को प्रदान करता है।

4) सहायक

सहायक वे बैंक हैं जो एक ऐसे देश में शामिल होते हैं जो किसी अन्य देश में आंशिक रूप से या पूरी तरह से मूल बैंक द्वारा स्वामित्व में है। सहयोगी सहायक कंपनियों से कुछ अलग हैं जैसे कि यह एक मूल बैंक के स्वामित्व में नहीं है और यह स्वतंत्र रूप से काम करता है।

5) विदेशी शाखा बैंक

विदेशी बैंक वे बैंक हैं जो कानूनी रूप से मूल बैंक के साथ बंधे होते हैं लेकिन एक विदेशी देश में काम करते हैं। एक विदेशी बैंक दोनों देशों के घर और एक मेजबान देश के नियमों और विनियमों का पालन करता है।

जोखिम के प्रकार

1) मुद्रा जोखिम

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यवसाय करते समय एक अंतरराष्ट्रीय बैंक को मुद्रा विनिमय दर से परिचित होना पड़ता है। वे कंपनियां जो एक विदेशी देश में काम करना चुनती हैं और उस समय उन्हें मुद्रा जोखिम से निपटना पड़ता है।

2) राजनीतिक जोखिम

राजनीतिक जोखिम व्यापार को भी प्रभावित करता है क्योंकि व्यवसाय को मेजबान देश के नियमों और विनियमन का पालन करना पड़ता है और प्रत्येक देश के व्यापार पर उनका राजनीतिक प्रभाव पड़ता है। यदि राजनीतिक निर्णय प्रतिकूल हैं तो यह व्यवसाय को प्रभावित करता है।

3) प्रतिष्ठा जोखिम

प्रतिष्ठा जोखिम का मतलब प्रतिष्ठित पूंजी में वास्तविक या मनाए गए नुकसान के आधार पर प्रतिष्ठित पूंजी में संभावित हानि है। बैंक को बैंक, डेटा मैनिपुलेशन, खराब ग्राहक सेवा और अनुभव के बारे में अफवाहों जैसे प्रतिष्ठित जोखिम का सामना करना पड़ता है। ग्राहकों, निवेशकों, नेताओं और आलोचकों द्वारा बैंक की प्रतिष्ठा का निर्धारण किया जाता है।

4) व्यवस्थित जोखिम

व्यवस्थित जोखिम विशेष बैंक से संबंधित नहीं है लेकिन यह पूरी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। एक व्यवस्थित जोखिम बड़ी इकाई की असफलताओं से जुड़ा हुआ है और यह पूरी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है।

अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग के उदाहरण

1. सिटी समूह
2. एचएसबीसी होल्डिंग्स

3. बैंक ऑफ अमरीका
4. जेपी मॉर्गन चेस
5. रॉयल बैंक ऑफ स्कॉटलैंड समूह।

4.6 सारांश

सहकारी बैंकों के कार्य लगभग व्यापारिक बैंकों के कार्यों से मिलते–जुलते है। अंतर केवल यह है कि सहकारी बैंक ग्रामीण क्षेत्र में कृषि तथा सेवाओं को ज़्यादा महत्व प्रदान करते है। इन बैंकों का आधारभूत कार्य किसानों, कारीगरों, कुटीर तथा लघु उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे अन्य कार्यो में साख सुविधाएं उपलब्ध कराना है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य दूर दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिग सुविधा पहुँचना, कमज़ोर वर्गो के लोगों के लिए रियायती दर पद ऋण उपलब्ध कराना, ग्रामीण बचतों को जुटाकर उत्पादक गतिविधियों में लगाना। इसकी स्थापना 2 अक्टूबर, 1975 को हुई। एक साथ 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित किए गए–उतर प्रदेश में मुरादाबाद और गोरखपुर, हरियाणा में भिवानी राजस्थान में जयपुर तथा पश्चिम बंगाल में माल्दा। बाद में देश के अन्य भागों में इसका विस्तार किया गया। निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को सरकार ने यह ज़िम्मेदारी सौंपी है कि निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को धर्म, जाति तथा लिंग का ध्यान किए बिना वे राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा में शामिल करें। आर्थिक सुधारों के एक भाग के रूप में निर्धन व्यक्तियों का आर्थिक समन्वय बाजार परक क्रिया में किया जाए, ताकि उन लोगों को अवसर मिल सकें जो मज़दूरी की वर्तमान/न्यूनतम दर पर काम करने के योग्य एवं इच्छुक है। इसके साथ अनाज के सार्वजनिक वितरण को भी जोड़ा जाए।

जिला स्तरों पर तकनीकी प्रयोजन उन क्रियाओं की पहचान के लिए संयोजित किए जाए जिनको परियोजना आधार पर संगठित किया जा सकता है। तकनीकी मिशन द्वारा चलाई गई उत्पादक क्रियाओं को संगठित करने लागू करने तथा चलाने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जाए।

आधारिक संरचना संबंधी क्रियाओं जैसे बायोगैस, कंपोस्ट, पेयजल, निर्माण तथा मनोरंजन संबंधी सुविधाएँ, स्कूल, संचार, पंचायत कार्यालय आदि की ओर ध्यान दिया जाए। ग्रामीण उत्पादित वस्तुओं की बिक्री के लिए बाजार का निर्माण करना, गांव पंसारी, जो गांव में श्रमिक की रोजाना की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तुओं का विनिमय अधिकतर अदला–बदली या वस्तु विनिमय आधार पर करता है, उसके लिए ग्रामीण स्तर पर एक शेड या गोदाम का बन्दोबस्त किया जाना आवश्यक है।

परियोजना ज़रूरतों एवं बाज़ारिक नेटवर्क की देखभाल शिक्षित युवक कर सकते है, जिनको यह प्रशिक्षण दिया जाता है कि वे सेवा और भाग के आधार पर कार्य करें न कि

आदेश और कृपालु के आधार, जो कि भारतीय समाज के लिए विनाशक तत्व बन चुका है। इसके अतिरिक्त सारे देश ऐसे कार्यक्रम शुरू किए जाएँ जिनसे मानवीय संसाधनों का विकास हो और जो बाँटने वाली राजनीति का मुकाबला कर सके। इसमे लिए आर.आर.बी. की प्रत्येक शाखा में वाणिज्य, प्रबंधकीय अर्थशास्त्र तथा इंजीनियरिंग में स्नातकों को सूची में लिया जाए, ताकि ये स्नातक युवक इस कार्यक्रम का सही रूप से संचालन कर सकें।

आर.आर.बी. के नेटवर्क के लिए एक दम आवश्यकता उनके लिए उपयुक्त मौद्रिक कोषों की है और इसके कार्यक्रमों को सही प्रकार से चलाने के लिए टैक्ना–इक्नामिक टीमों, अध्यापकों तथा डाक्टरों के समर्थन की आवश्यकता है। आर.आर.बी. को यह अनुमति दी जाए कि निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को वे जहाँ तक हो सके कम करें। विकास प्रक्रिया में इन बैंकों को कमज़ोर वर्ग की सहायता के ऋण देने वाली संस्था न बनाकर, उत्प्रेरक या परिवर्तनकारी बनाया जाना चाहिए, ताकि कुछ उत्साहजनक परिणाम सामने आ सकें।

4.7 बोध प्रश्न

1. सहकारी बैंकिंग प्रणाली का उल्लेख कीजिए।
2. भारत में सहाकरी बैंकिंग प्रणाली की धीमी प्रगति होने के क्या कारण हैं?
3. भारत में सहकारी बैंकिंग को बढ़ावा देने के लिए आप क्या सुझाव देंगे?
4. सहकारी बैंकिंग के सुधर के लिए कपूर समिति की सिफारिशों का उल्लेख कीजिए।
5. भारत में सहकारी बैंकिंग के क्या लाभ हैं? इसकी सफलता एवं असफलता का मूल्यांकन कीजिए।
6. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की क्या आवश्यकता थी?
7. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
8. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की विभिन्न समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

4.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

- Gomez, Clifford (2010), Financial Markets, Institutions and Financial Services, PHI Learning, New Delhi.
- Gordon, Natarajan (2010), Financial Markets and Services, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Kohn Meir (1999), Financial Institutions and Markets, Tata McGraw Hill, New Delhi.

इकाई - 5 गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थायें

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 औद्योगिक वित्त और संस्थायें - आईएफसीआई, आईसीआईसीआई, आईडीबीआई, नाबार्ड, एलआईसी

5.3 अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थायें

5.4 सारांश

5.5 बोध प्रश्न

5.6 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- विभिन्न औद्योगिक वित्त और संस्थाओं के बारे में समझ सकेंगे।
- विभिन्न अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के बारे में समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) के इस दौर में कोई देश अलग-थलग नहीं कर सकता। यही बात किसी देश की वित्त व्यवस्था का लेकर है। भारत जैसे विकासशील देश में वित्त के विदेश स्रोतों से विदेशी निवेश की तो और भी अधिक आवश्यकता है। हमारे पास इसे पाने के अनेक स्रोत हैं। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ हैं जो सुपांत्र मामलों में विशेष उद्देश्यों के लिए ऋण देती हैं। फिर अंशपूँजी और ऋण, दोनों ही रूपों में भारतीय कंपनियों के पास विदेशी मुद्रा संसाधन जुटाने के बहुत से रास्ते हैं। हाल के वर्षों में इन स्रोतों से भारत में धन का प्रवाह बढ़ा है। इस इकाई में हम भारत के लिए उपलब्ध वित्त के इन बाह्य स्रोतों का अध्ययन करेंगे।

5.2 औद्योगिक वित्त और संस्थायें - आईएफसीआई, आईसीआईसीआई, आईडीबीआई, नाबार्ड, एलआईसी

आईएफसीआई (भारतीय औद्योगिक वित्त निगम)

यह प्रथम अखिल भारतीय सार्वजनिक विशिष्ट वित्तीय संस्था है। इस निगम की स्थापना 1 जुलाई 1984 में की गई थी। इस निगम का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक विकास के लिए विभिन्न औद्योगिक इकाइयों को मध्यम तथा लंबी अवधि के ऋण उपलब्ध करवाना है। यह अपनी वित्तीय नीतियों को देश औद्योगिक नीतियों एवं राष्ट्रीय नीतियों को ध्यानमें रखकर तैयार करती है। सरकार द्वारा निर्धारित किए गए प्राथमिकता क्षेत्र को इसके द्वारा अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसके द्वारा योग्य इकाइयों को सीधे वित्त की सुविधा भी दी जाती है। इस उद्देश्य के लिए योग्य इकाइयों को भी स्पष्ट रूप से समझाया गया है।

योग्यता आधार

इस संगठन द्वारा सीधे वित्त के लिए निम्न को योग्य समझा जाता है।

(a) भारत में समामेलित सार्वजनिक, निजी या संयुक्त क्षेत्र की कंपनियाँ,

(b) भारत में पंजीकृत सहकारी समितियाँ जो निम्न कार्यों में लगी हैं या लगने की सोच रही हैं, जैसे (i) वस्तुओं (विशेष) के उत्पादन, रख-रखाव प्रक्रियाओं में, (ii) शिपिंग, (iii) माइनिंग, (iv) होटल उद्योग, (v) विद्युत के बनाने या वितरण संबंधी कार्यों में, (vi) वस्तुओं के यातायात संबंधी कार्यों में, (vii) औद्योगिक बस्तियों के स्थापन एवं विकास में, (viii) मछली उद्योग, (ix) मशीनी, उपकरणों, या गाड़ियों के रख-रखाव, सेवाएँ, परीक्षण, मरम्मत कार्यों में, (x) स्वास्थय सेवा या संबंधित क्षेत्र, (xi) तकनीकी, दूर संचार या इलेक्ट्रॉनिक सेवा कार्य (xii) लीजिंग कार्य, (xiii) उपरोक्त वर्णित किसी भी क्षेत्र में शोध कार्य में।

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के कार्य

इसके कार्यों के दो मुख्य भागों बांटा जा सकता है :

A. वित्तीय सहायता :यह संस्थान निम्नलिखित में से एक या एक से अधिक रूपों में वित्तीय सहायता प्रदान करता है:

(i) औद्योगिक इकाइयों को ऋण एवं अग्रिम राशि दकेर,

(ii) औद्योगिक इकाइयों द्वारा जारी ऋणपत्र करके,

(iii) औद्योगिक इकाइयों द्वारा पूँजी बाजार से लिए गए ऋणों की गारंटी द्वारा

(iv)औद्योगिक इकाइयों द्वारा जारी किए गए अंश, ऋणपत्र, स्टॉक, बांड आदि के अभियोजन द्वारा

(v) कंपनियों के समता अंश, पूर्वाधिकार अंश व ऋणपत्रों के द्वारा

(vi)नई औद्योगिक परियोजना की स्थापना के लिए सहायता तथा विद्यमान इकाइयों को उनके विस्तार, विविधीकरण, आधुनिकीकरण एवं पुनर्निर्माण के लिए सहायता

(vii) रूपयों तथा विदेशी मुद्रा के रूप में सहायता

(viii) मध्यम एवं बड़ी औद्योगिक इकाइयों के विदेशी ऋणों व के संबंध में द्वारा।

(B) प्रोत्साहर गतिविधियाँ : प्रोत्साहन क्रियाओं के अंतर्गत यह निगम विभिन्न कार्य करता है, जैसे-

(i) संस्थागत संसाधनों एवं प्रोत्साहन कार्यों में कमी की पूर्ति करना

(ii) नयी परियोजना के लिए परियोजना रिपोर्ट तैयार करने, परियोजना निर्माण करने तथा उसे लागू करने के लिए सलाह देना तथा ऐसे कार्यों में तेजी लाना।

(iii) सुक्षम एवं लघु उद्योगों में मानवीय संसाधनों की उत्पादकता में वृद्धि लाना

(iv) उत्पादन के संसाधनों में मानवीय संसाधनों की उत्पादकता में वृद्धि लाना

(v) अर्थव्यवस्था में औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देना,

(vi) उद्यमिता को बढ़ावा देनाद्य

आईसीआईसीआई (भारतीय औद्योगिक ऋण तथा निवेश निगम)

इसे सन् 1955 औद्योगिक निवेश एवं विकास को बढ़ावा देने के लिए स्थापित किया गया था। इस बैंक की स्थापना का विचार भारत सरकार, विश्व बैंक तथा कुछ अमेरिकन निवेशकों के बीच हुए विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ था। इस विचार को मूर्त रूप देने के लिए एक विशेष समिति गठित की गई थी। इस समिति के प्रयासों के कारण सन् 1955 में ICICI की स्थापना एक पब्लिक लिटिटेड कंपनी के रूप में की गई। तत्पश्चात इसे बैंक में परिवर्तन कर दिया गया।

भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम के उद्देश्य

इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

(i) निजी उद्यमों के सृजन, विस्तार एवं आधुनिकीकरण में सहायता देना,

(ii) इन उद्यमों में आंतरिक एवं बाह्य स्रोतो की मदद से निजी पूँजी लगाने प्रोत्साहित करना,

(iii) औद्योगिक निवेश तथा बाजार के विकास के लिए निजी क्षेत्र को बढ़ावा देना ता प्रोत्साहित करना।

भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम के कार्य

उपरोक्त वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निगम निम्नलिखित कार्य करता है :

(i) समता भागिता के आधार पर कोष प्रदान करना,
(ii) 15 वर्ष के पश्चात वापिस किए जाने वाले ऋण प्रदान करना,
(iii) नए अंशों व प्रतिभूतियों को प्रायोजित करना व उनका अभिगोपन करना,
(iv) निजी स्रोतों से लिए निवेश की गारंटी देना,
(v) उद्योगों को प्रबंधकीय, तकनीकी एवं प्रशासनिक सहायता देना,
(vi) देश के अविकसित क्षेत्रों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहन गतिविधियाँ आयोजित करना,
(vii) एक मर्चेंट बनकर के रूप में कार्य करना,
(viii) लीज फाइनेंसिंग की सुविधा प्रदान करना, महत्वपूर्ण पूंजीगत संयंत्रों के लिए विदेशी मुद्रा के रूप में ऋण प्रदान करना।

आईडीबीआई (भारतीय औद्योगिक विकास बैंक)

इसकी स्थापना 1 जुलाई, 1964 को औद्योगिक विकास के संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए की गई थी। इसे अवधि ऋण प्रदान करने के लिए शीर्ष संस्था के रूप में स्थापित किया गया था। परन्तु सन 1965 में इसकी पुनः संरचना की गई तथा इसे प्रमुख वित्तीय संस्थान का रूप दे दिया गया तथा इसे देश की राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए देश में औद्योगिक विकास के प्रोत्साहन कार्यों में शामिल विभिन्न बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के प्रयासों को समन्वित करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के कार्य

इस बैंक के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं:

(i) औद्योगिक इकाइयों को विभिन्न विधियों; जैसे – ऋण, अभिगोपन, अंशों व रिन्पत्रों के अभिदान द्वारा सीधे वित्तीय सहायता प्रदान करना,
(ii) बैंकों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋणों के आधार पर पुनर्वित्त प्रदान करना,
(iii) अन्य वित्तीय संस्थाओं को उनके अंशों व बांड अभिदान के आधार पर वित्तीय सहायता देना,
(iv) औद्योगिक विकास के प्रोत्साहन संबंधी गतिविधियों में समन्वय स्थापित करना,

(v) निर्यात को सीधे वित्तीय सहायता प्रदान करना।

(vi)उद्योगों के विकास हेतु बाजार एवं निवेश संबंधी शोध कार्य करना।

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) मुम्बई, महाराष्ट्र अवस्थित भारत का एक शीर्ष बैंक है। इसे "कृषि ऋण से जुड़े क्षेत्रों में, योजना और परिचालन के नीतिगत मामलों में तथा भारत के ग्रामीण अंचल की अन्य आर्थिक गतिविधियों के लिए मान्यता प्रदान की गयी है।

शिवरामन समिति (शिवरामन कमिटी) की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक अधिनियम 1981 को लागू करने के लिए संसद के एक अधिनियम के द्वारा 12 जुलाई 1982, को नाबार्ड की स्थापना की गयी। इसने कृषि ऋण विभाग (एसीडी (ACD) एवं भारतीय रिजर्व बैंक के ग्रामीण योजना और ऋण प्रकोष्ठ (रुरल प्लानिंग एंड क्रेडिट सेल) (आरपीसीसी (RPCC)) तथा कृषि पुनर्वित्त और विकास निगम (एआरडीसी (ARCD)) को प्रतिस्थापित कर अपनी जगह बनाई. यह ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण उपलब्ध कराने के लिए प्रमुख एजेंसियों में से एक है।

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक एक एसा बैंक है जो ग्रामीणों को उनके विकास एवं आर्थिक रूप से उनकी जीवन स्तर सुधारने के लिए उनको ऋण उपलब्ध कराती है।

कृषि, लघु उद्योग, कुटीर एवं ग्रामीण उद्योग, हस्तशिल्प और अन्य ग्रामीण शिल्पों के उन्नयन और विकास के लिए ऋण-प्रवाह सुविधाजनक बनाने के अधिदेश के साथ नाबार्ड 12 जुलाई 1982 को एक शीर्ष विकासात्मक बैंक के रूप में स्थापित किया गया था। उसे ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य संबंधित क्रियाकलापों को सहायता प्रदान करने, एकीकृत और सतत ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने और ग्रामीण क्षेत्रों में समृद्धि सुनिश्चित करने का भी अधिदेश प्राप्त है।

भूमिका

ग्रामीण समृद्धि के फैसिलिटेटर के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करने के लिए नाबार्ड को निम्नलिखित जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं :

i. ग्रामीण क्षेत्रों में ऋणदाता संस्थाओं को पुनर्वित्त उपलब्ध कराना

ii. संस्थागत विकास करना या उसे बढ़ावा देना

iii. क्लाइंट बैंकों का मूल्यांकन, निगरानी और निरीक्षण करना.

iv. ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न विकासात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए जो संस्थान निवेश और उत्पादन ऋण उपलब्ध कराते हैं उनके वित्तपोषण की एक शीर्ष एजेंसी के रूप में यह कार्य करता है।

v. ऋण वितरण प्रणाली की अवशोषण क्षमता के लिए संस्थान के निर्माण की दिशा में उपाय करता है, जिसमे निगरानी, पुनर्वास योजनाओं के क्रियान्वयन, ऋण संस्थाओं के पुनर्गठन, कर्मियों के प्रशिक्षण में सुधार, इत्यादि शामिल हैं।

vi. सभी संस्थाएं जो मूलतः जमीनी स्तर पर विकास में लगे काम से जुडी हैं, उनकी ग्रामीण वित्तपोषण की गतिविधियों के साथ समन्वय रखता है, तथा भारत सरकार, राज्य सरकारों, भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई (RBI)) एवं नीति निर्धारण के मामलों से जुडी अन्य राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं के साथ तालमेल बनाए रखता है।

vii. यह अपनी पुनर्वित्त परियोजनाओं की निगरानी एवं मूल्यांकन का उत्तरदायित्व ग्रहण करता है।

नाबार्ड का पुनर्वित्त राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंकों (SCARDBs), राज्य सहकारी बैंकों ((SCBs), क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRBs) बैंकों, वाणिज्यिक बैंकों (सीबीएस (CBS)) और आरबीआई अनुमोदित अन्य वित्तीय संस्थानों के लिए उपलब्ध है। जबकि निवेश ऋण का अंतिम लाभार्थियों में व्यक्तियों, साझेदारी से संबंधित संस्थानों, कंपनियों, राज्य के स्वामित्व वाले निगमों, या सहकारी समितियों को शामिल किया जा सकता है, जबकि आम तौर पर उत्पादन ऋण व्यक्तियों को ही दिया जाता है।

नाबार्ड का अपना मुख्य कार्यालय मुंबई, भारत में है।

नाबार्ड अपने 28 क्षेत्रीय कार्यालय और एक उप कार्यालय, जो सभी राज्यों / केंद्र शासित प्रदेशों की राजधानियों में स्थित हैं, के माध्यम से देश भर में परिचालित है। प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय [आरओ] में प्रधान कार्यकारी के रूप में एक मुख्य महाप्रबंधक [CGMs] है और प्रधान कार्यालय में कई शीर्ष अधिकारी कार्यकारी होते हैं जैसेकि कार्यकारी निदेशक [ईडी], प्रबंध निर्देशकों [एमडी] और अध्यक्ष.संपूर्ण देश में इसके 336 जिला कार्यालय, पोर्ट ब्लेयर में एक उप-कार्यालय और श्रीनगर में एक सेल है। इसके पास 6 प्रशिक्षण संस्थान भी हैं।

नाबार्ड को इसके 'एसएचजी (SHG) बैंक लिंकेज कार्यक्रम' के लिए भी जाना जाता है जो भारत के बैंकों को स्वावलंबी समूहों (एसएचजीज (SHGs)) उधार देने के लिए प्रोत्साहित करता है। क्योंकि एसएचजीज का गठन विशेषकर गरीब महिलाओं को लेकर किया गया है, इससे यह माइक्रोफाइनांस के लिए महत्वपूर्ण

भारतीय उपकरण के रूप में विकसित हो गया है। इस कार्यक्रम के माध्यम से मार्च 2006 तक 33 मिलियन सदस्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले 2200000 लाख स्वयं सहायता समूह ऋण से जुड़ चुके थे।

नाबार्ड के पास प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन कार्यक्रम का भी एक (विभाग) पोर्टफोलियो है जिसमें के एक समर्पित उद्देश्य के लिए स्थापित कोष के माध्यम से जल संभर विकास, आदिवासी विकास और नवोन्मेषी फार्म जैसे विभिन्न क्षेत्रों को शामिल किया गया है।

ग्रामीण नवोन्मेष

भारत में ग्रामीण विकास के क्षेत्र में नाबार्ड की भूमिका अभूतपूर्व है। कृषि, कुटीर उद्योग और ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए ऋण प्रवाह को सुविधाजनक बनाने और विकास को बढ़ावा देने के अधिदेश के साथ भारत सरकार ने राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की स्थापना एक शीर्षस्थ विकास बैंक के रूप में की. नाबार्ड द्वारा कृषिगत गतिविधियों के लिए स्वीकृत ऋण प्रवाह (क्रेडिट फ्लो) 2005-2006 में 1574800 मिलियन रुपए तक पहुंच गया। कुल सकल घरेलू उत्पाद में 8.4 फीसदी की दर से बढ़ने का अनुमान है। आने वाले वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था अपनी सम्पूर्णता में उच्च विकास दर के लिए प्रस्तुत है। सामान्य रूप से भारत के समग्र विकास में तथा विशिष्टरूप से ग्रामीण एवं कृषि के विकास में नाबार्ड की भूमिका अहम रूप से निर्णायक रही है।

विकास और सहयोग के लिए स्विस एजेंसी की सहायता के माध्यम से, नाबार्ड ने ग्रामीण अवसंरचना विकास निधि की स्थापना की. आरआईडीएफ योजना के तहत 2,44,651 परियोजनाओं के लिए रू. 512830000000 मंजूर दी गई हैं जिसके अंतर्गत सिंचाई, ग्रामीण सड़कों और पुलों के निर्माण, स्वास्थ्य और शिक्षा, मिट्टी का संरक्षण, जल की परियोजनाएं इत्यादि शामिल हैं। ग्रामीण नवोन्मेष कोष एक ऐसा कोष है जिसे इस प्रकार डिजाइन किया गया है जिसमे नवोंमेश का समर्थन, जोखिम के प्रति मित्रवत व्यवहार, इन क्षेत्रों में अपरंपरागत प्रयोग करेगा जिसमे ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के अवसर और रोजगार को बढ़ावा देने की क्षमता होगी. व्यक्तियों, गैर सरकारी संगठनों, सहकारिता, स्वावलंबी समूहों और पंचायती राज संस्थाओं को सहायता के हाथ बढ़ा दिये गए हैं, जिनमे ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने की दक्षता और नवोन्मेषी विचारों को लागू करने की इच्छा है। लाख 2 करोर 50 लाख की सदस्यता के जरिये, 600000 सहकारिता संस्थाएं भारत में जमीनी मौलिक स्तर पर लगभग अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में काम कर रही हैं। स्वसहायता समूहों और अन्य प्रकार के संस्थानों के बीच सहकारी समितियों के साथ संबंध हैं।

आरआईडीएफ के प्रयोजन के लिए व्यावहारिक मतलब के माध्यम से ग्रामीण और कृषि क्षेत्र में नवाचार को बढ़ावा देना है। कार्यक्रम की प्रभावशीलता कई कारकों पर निर्भर करती है, लेकिन जिस संगठन को सहायता दी जाती है गयी है उसके प्रकार, अनुकूलतम व्यावसायिक तरीके से विचारों को क्रियान्वित करने में विशेष रूप से जटिल है। सहकारी संस्था सामाजिक-आर्थिक उद्देश्य के लिए सदस्य प्रेरित औपचारिक संगठन है, जबकि एसएचजी एक अनौपचारिक संस्था है। स्वयंसेवी संस्था सामाजिक रंग में अधिक ढली है, जबकि पंचायती राज राजनीति से जुड़ा है। यह संस्थान क्या कानूनी स्थिति को बरकरार रखते हुए कार्यक्रम की प्रभावशीलता को प्रभावित करती है? कैसे और किस हद तक? गैर सरकारी सहायता संगठनों (एनजीओ (NGO)), स्वसहायता समूहों एसजीएच (SHG) एवं पीआरआई (PRIs) की तुलना में सहकारी संगठन, (कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र) में कार्य करने में (वित्तीय क्षमता एवं प्रभावशीलता) में बेहतर है।

वर्ष 2007-08 में हाल ही में, नाबार्ड ने 'प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के लिए छतरी सुरक्षा कार्यक्रम (यूपीएनआरएम (UPNRM)) के तहत एक नया प्रत्यक्ष ऋण सुविधा शुरू कर दी है। इस सुविधा के अंतर्गत प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन गतिविधियों के तहत ब्याज की उचित दर पर ऋण के रूप में वित्तीय समर्थन प्रदान किया जा सकता है। पहले से ही 35 परियोजनाओं को मंजूरी दे दी गयी है जिसमे ऋण की राशि लगभग 1000 मिलियन रूपये तक पहुंच गयी है। स्वीकृत परियोजनाओं के अंतर्गत महाराष्ट्र में आदिवासियों द्वारा शहद-संग्रह, कर्नाटक में पर्यावरण-पर्यटन, एक महिला निर्माता कंपनी ('मसुता (MASUTA)') द्वारा तस्सर मूल्य श्रृंखला (tussar value chain) आदि शामिल हैं।

एलआईसी

भारतीय जीवन बीमा निगम, भारत की सबसे बड़ी जीवन बीमा कंपनी है और देश की सबसे बड़ी निवेशक कंपनी भी है। यह पूरी तरह से भारत सरकार के स्वामित्व में है। इसकी स्थापना सन् 1956 में हुई।

इसका मुख्यालय भारत की वित्तीय राजधानी मुंबई में है। भारतीय जीवन बीमा निगम के 8 आंचलिक कार्यालय और 101 संभागीय कार्यालय भारत के विभिन्न भागों में स्थित हैं। इसके लगभग 2048 कार्यालय देश के कई शहरों में स्थित हैं और इसके 10 लाख से ज्यादा एजेंट भारत भर में फैले हैं।

5.3 अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थायें

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (इंटरनेशनल मोनेटरी फंड – आई.एम.एफ.)

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का जन्म जुलाई 1944 के ब्रेटनबुड्स सम्मेलन में हुआ। तब 94 देश इसके सदस्य थे। आज क्यूबा को छोड़ अधिकांश देश इसके सदस्य हैं। आई एम एफ अंतरराष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था की केंद्रीय संस्थान है। भुगतान-संतुलन ठीक करने में सदस्य देशों को सहायता देना इसका प्रमुख उद्देश्य है। भारत संतुलन में सुधार समष्टिगत (मैक्रो) आर्थिक नीतियों में परिवर्तन करके लाया जाता है। मुद्रा कोष, मुद्रा, सीमा शुल्क और विनिमय दर की नीतिया के क्षेत्रों में अध्ययन कराता है और परिवर्तनों की सिफारिश करता है। गत वर्षों में कोष ने तीसरी दुनिया की ऋण समस्या को हल करने के अधिक दीर्घकालिन प्रयासों में सक्रिय भूमिका निभाई है।

उद्देश्य : कोष के अनुबंध की धाराओं के अनुसार मुद्रा कोष के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

अ) एक ऐसी स्थायी संस्था द्वार अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना जो अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक समस्याओं पर परामर्श और सहयोग का एक तंत्र प्रदान करे।

ब) अंतरराष्ट्रीय व्यापार के प्रसार और संतुलित संवृद्धि को बढ़ावा देना तथा आर्थिक नीति के प्रमुख उद्देश्यों के रूप में सभ सदस्य देशों में रोजगार और वास्तविक आय के ऊँचे स्तर पाने और बनाए रखने में उत्पादक शक्तियों का विकास करने में योगदान देना।

स) सदस्यों के बीच सुव्यवस्थित विनिमय के बंदोबस्त बनाए रखनेतथा विनिमय में प्रतियोगिता के कारण ह्रास से बचने के उद्देश्य से विनिमय संबंधी स्थायित्व को बढ़ावा देना।

द) सदस्यों के बीच चालू लेन-देन के लिए भुगतान की अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना में तथा विश्व-व्यापार की संवृद्धि में बाधक विदेशी मुद्रा संबंधी बाधाओं को समाप्त करना।

य) सदस्यों को कोष के सामान्य संसाधन अस्थयी रूप से उपलब्ध कराके उनके बीच आपसी विश्वास पैदा करना। इससे राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय समृद्धि को ठेस पहुँचाने वाले उपायों का सहारा लिए बिना अपने भुगतान संतुलन संबंधी गड़बड़ियों को ठीक करने का अवसर मिलता है।

र) उपरोक्त उद्देश्यों के अनुरूप सदस्य देशों के भुगतान-संतुलन में प्रतिकूलन की अवधि को कम करना तथा इस असंतुलन के परिणाम को कम करना।

इस तरह अंतरराष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था के समुचित संचालन पर निगरानी रखने के अलावा कोष सदस्य देशों को भुगतान संतुलन संबंधी अस्थायी संकट का सामना करने में सहायता भी देता है।

सांगठनिक ढाँचा : आई एम एफ एक स्वायत्त संगठन है जिसके 181 सदस्य देश हैं। उसका सर्वोच्च नीति निर्माता प्रशासक मंडल है जिसमें हर सदस्य देश का एक प्रतिनिधि गवर्नर होता है तथा में एक वैकल्पिक गवर्नर भी होता है। प्रशासन का दायित्व कार्यकारी निर्देशकों के बोर्ड के ऊपर है।

विनिमय दरें : जैसा कि कहा गया, आई एम एफ का एक उद्देश्य विनिमय दरों में स्थायित्व को प्रोत्साहन देना है। इसके लिए प्रत्येक सदस्य देश से आरंभ में आशा की गई कि वह सोने या अमरिकी डालर के सापेक्ष अपनी मुद्रा का सममूल्य (पार वैल्यू) गोषित करेगा और उसक घोषित सममूल्य को एक प्रतिशत के अंदर उतार-चढ़ाव तक सीमि रखने का आश्वासन देगा। सममूल्य में परिवर्तन सिर्फ कोष की पूर्वानुमति से संभव था। ऐसे परिवर्तन की अनुमति तथी दी जाती थी जब सदस्य देश भुगतान के बुनियादी असंतुलन से ग्रस्त हो। इस व्यवस्था को समायोजिनीय कील व्यवस्था, (एडजस्टिबुल पेग सिस्टम) कहा गया क्योंकि इसमें विनिमय दरों के समायोजन का प्रावधान था।

उपरोक्त व्यवस्था पिछली सदी के सत्तरवें दशक तक जारी रही। अमरीकी डालर के अवमूल्यनों की एक श्रंखला के बाद ब्रेटन वुड्स सिस्टम नामक व्यवस्था मार्च, 1973 में धराशायी हो गई और 14 प्रमुख राष्ट्रों ने अपनी मुद्राओं को परिवर्तनीय बनाने का निश्चय किया। इस समय कोष के लगभग एक तिहाई सदस्य देशों की मुद्रा परिवर्तनीय है। कुछ ने अपनी मुद्रा का अमरीकी डालर, कुछ ने फ्रांसीसी फ्रांक और कुछ ने एस डी आर के साथ सममूल्य स्थापित कर रखा है।

संसाधन : अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की पूँजीका मुख्य स्रोत उसके सदस्य देशों द्वारा दिया गया योगदान है। हर सदस्य देश के चन्दा (योगदान) को कोटा कहते हैं जो उस देश की राष्ट्रीय आय, विदेशी मुद्रा भंडार, निर्यात की परिवर्तनीयता और राष्ट्रीय आय से उसके निर्यातों के अनुपात आदि अनेक लतों पर आधारित होता है। आरंभ में सदस्य देशों से अपेक्षा की गई थी कि वे अपने कोटे का 25 प्रतिशत सोने या अमरीकी डलरों के रूप में और बाकी अपनी खुद की मुद्रा में दे। लेकिन इस समय-समय पर इन कोटों की समीक्षा की जाती है और इनके बीच का अंतराल 5 वर्षों से अधिक का नहीं होता। 1994 में कोष की पूँजी 144.6 अरब एस डी आर थी।

सदस्य देशों से कोटा के रूप में अनुदान पाने के अलावा मुद्रा कोष को 'सामान्य ऋण व्यवस्था' (जनरल अरेंजमेंट टू बारों) के अंतर्गत भी ऋण लेने का अधिकार है। इस व्यवस्था में दस औद्योगिक देश

अपनी-अपनी मुद्राओं में एक सहमत सीमा तक कोष को ऋण देने को तैयार होते हैं। मुद्रा कोष इस व्यवस्था में मूलत: तभी ऋण ले सकता था जब भागीदार देशों को धन की आवश्यकता होती थी। पर आज दूसरे देशों के आहरण की व्यवस्था के लिए भी कोष इन निधियों का प्रयोग कर सकता है, बशर्ते ऋण लेने वाले देश, कोष द्वारा अनुमोदित आर्थिक समायोजिन कार्यक्रम करने पर सहमत हों।

विशेष आहरण अधिकारी (एस डी आर)

ब्रेटनवुड्स में कायम मौद्रिक व्यवस्था ने विश्व-व्यापार के तीव्र प्रसार में एक सकारात्मक भूमिका निभाई। मगर इसके प्रमुख दोषों में एक दोष यह था कि प्रसार मान व्यापार को सहारा देने के लिए आवश्यक अंतरराष्ट्रीय मुद्रा भंडार की आपूर्ति बढ़ाने का इसमें कोई प्रावधान नहीं था। इससे अंतत: राष्ट्रीय मुद्राओं के भंडार की आपूर्ति बढ़े खासकर अंतरराष्ट्रीय मुद्रा के रूप में अमरीकी डालर की स्थिति मजबूत हुई। अमरीकी डालर नई मुद्रा व्यवस्था की आरक्षित परिसंपत्ति बन गए। लेकिन विश्व-व्यापार के प्रसार के साथ अंतरराष्ट्रीय तरलता की आवश्यकता भी बढ़ी। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा की यह आवश्यकता पूरी करने के लिए इस व्यवस्था में डालरों की आपूर्ति के लिए अमरीका के भुगतान-संतुलन में घाटे का जारी रहना आवश्यक था। सन साठ के दशक के अंतिम वर्षों में अंतरराष्ट्रीय तरलता की यह कमी अपनी चरम पर पहुँच गयी। 1969 में विशेष आहरण अधिकार (स्पेशल ड्राइंग राइट्स) के नाम से एक नई अंतरराष्ट्रीय आरक्षित परिसंपत्तिजारी करके मुद्रा कोष ने इस समस्या का सामना किया।

एस डी आर मूलत: डालरों की एक निश्चित संख्या के बराबर था। आज यह अमीरीकी डालर, जर्मन मार्क, जापान के येन, फ्रांस के फ्रांक और ब्रिटेन के पाउंड स्टर्लिंग जैसी विभिन्न मुद्राओं की 'टोकर' है। 1969 में सदस्य देशों को ये एस डी आर वैसे ही आवंटित किए गए जैसे एक कंपनी के शेयर धारकों को बोनस जारी किए जाते है।

वित्त व्यवस्था की योजनाएँ : भुगतान संतुलन में घाटा झेल रहे सदस्य देशों को वित्तीय सहायता देना मुद्रा कोष के उद्देश्यों में एक है। आई एम एफ से निकासी (आहरण, ड्राइंग) इस वित्त–व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण उपाय है। इस योजना में जब भी सदस्य एक देश को अपने भुगतान-संतुलन संबंधी अल्पकालिक घाटे पर काबू पाने के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है, वह मुद्रा कोष से अपनी मुद्रा देकर आवश्यक विदेशी मुद्रा ले लेता है। इसे कोश से 'आहरण' कहते हैं। आहरणकर्ता देश की भुगतान संतुलन की स्थिति जब सुधर जाती है तो वह अपनी मुद्रा की 'पुनर्खरीद,कर विदेशी मुद्रा लौटा देता है। सामान्यत: एक देश 12 माह की अवधि में अपने कोटा के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं निकाल सकता। एक सदस्य का समग्र आहरण उस स्तर तक पहुँच सकता है जहाँ आई एम एफ में उस देश की मुद्रा का भंडार उसके कोटा का 200 प्रतिशत हो जाए। उदाहरण के लिए मान ले कि देश 'अ' का कोटा 100 एस टी आर है जिसमें वह 75

प्रतिशत अपनी ही मुद्रा में देता है, अर्थात् देश 'अ' ने अपनी मुद्रा में 75 एस डी आर के बराबर योगदार दिया है। देश 'अ' अधिकतम 125 एस डी आर का ऋण ले सकता है जिससे उसकी कुल मुद्रा 200 एस डी आर हो जाती है जो उसके कोटे का 200 प्रतिशत है। लेकिन विशेष दशाओं में यह शर्त समाप्त भी की जा सकती है।

एक सदस्य देश द्वारा कोष से आहरण की प्रक्रिया चरणों या किस्तों (ट्रैंचेज) में विभाजित होती है। जिस आहरण के बाद कोष में संबद्ध देश का भंडार उसके कोटा का 100 प्रतिशत हो जाए, 'आरक्षित किस्त' कहलाता है। इस आरक्षित किस्त से आगे कोई भी निकासी चार बराबर किस्तों में विभाजित की जाती है जिन्हें 'ऋण की किस्तें' कहते हैं। कोई देश अपनी आरक्षित किस्त से मुक्त-भाव से निकासीकर सकता है, पर ऋण की किस्तों से निकासी आई एफ द्वारा अधिकाधिक छानबीन के बाद ही संभव है।

मुद्रा कोष की वित्तीय सहायता की कुछ और योजनाएँ भी हैं। कुछेक योजनाएँ इस प्रकार हैं:

अ) कामचलाऊ (स्टैंडबाई) व्यवस्थाएँ : इस व्यवस्था में एक सदस्य को एक निश्चित सीमा तक और निश्चित कालखंड में मुद्रा कोष से आहरण की अनुमति है। यह सुविधा कोष और सदस्य देश के बीच आपसी वार्ता से मिलती है। यह व्यापारिक बैंकों द्वारा दी जाने वाली ओवर ड्राफ्ट सुविध जैसी है।

ब) ढाँचागत समायोजन सुविधा: इस योजना का उद्देश्य लंबे समय से भुगतान संतुलन की समस्या झेल रहे सदस्य देशों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है जिनका उद्देश्य संवृद्धि को बढ़ावा देना तथा भुगतान-संतुलन की स्थिति को मजबूत बनाना होता है। ये ऋण सदस्य देश के कोटे के अनुपात में होते हैं। सामान्यत: ये ऋण तीन वर्षकी अवधि में वितरित किए जाते हैं और इस बीच ऋण लेने वाले देश को ढाँचागत समायोजन (स्ट्रक्चरल एटजस्टमैंट) सुनिश्चित करने के लिए तीन वर्षीय व्यापक रणनीति तैयार होती है।

स) परिवर्धित (एनहांस्ड) ढाँचागत समायोजन सुविधा: यह योजना ढाँचागत समायोजन सुविधा से मिलती-जुलती है पर विशेष रूप से निर्धनतम सदस्य देशों के लिए है जो एक जोरदार तीन वर्षीय समष्टिगत आर्थिक और ढाँचागत कार्यक्रम चला रहे हैं।

द) विस्तरित निधि सुविधा: विस्तारित निधि (एक्सटेडेड फंड) की सुविधा का उद्देश्य सामान्य आहरण कार्यक्रम के अंतर्गत उपलब्ध धन से अधिक मात्रा में और अधिक लंबे समय से भुगतान संतुलन के घाटे झेल रहे सदस्य देशों की सहायता करना है। यह सुविधा उत्पादन व्यापार और मूल्यों में ढाँचागत असंतुलन के कारण भुगतान संतुलन की गंभीर समस्याएँ झेल रहे देशों के लिए है।

अंतरराष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (आई बी आर डी)

अंतरराष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (इंटरनेशनल बैंक फार रिकंस्ट्रक्शन एंड डवलपमेंट बैंक), जिसे विश्व बैंक नाम से भी जाना है, की स्थापना भी 1944 के ब्रेटन बुड्स सम्मेलन में की गई। सदस्य देशों के पुनर्निर्माण और विकास के लिए उन्हें दीर्घकालिक सहायतादेना विश्व बैंक का प्रमुख कार्य है। आरंभ में विश्व बैंक के प्रयास यूरोप की युद्ध से त्रस्त अर्थव्यवस्थाओं पर केंद्रित थे पर बाद में पिछड़े देशोंका विकास इनका महत्वपूर्ण मुद्दा हो गया।

विश्व बैंक के कार्य : विश्व बैंक के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं:

अ) उत्पादन कार्यों के लिए पूँजी के निवेश को बढ़ावा देकर सदस्य देशों के पुनर्निर्माण और विकास में सहायता देना।

ब) उत्पादन कार्यों के लिए ऋणों की गारंटी द्वाराया दूसरे पूँजी निवेशों की जमानत देकर निजी निवेश को बढ़ावा देना।

स) जहाँ मुनासिब शर्तों पर निजी पूँजी उपलब्ध हो, वहाँ अपने संसाधनों में से या ऋण लिए गए धन में से उत्पादक कार्यों के लिए देना।

द) सदस्य देशों के उत्पादक संसाधनों के विकास के लिए अंतरराष्ट्रीय निवेश को प्रोत्साहन देकर अंतरराष्ट्रीय व्यापार की दीर्घकालिक संवृद्धि तथा सदस्यों के भुगतान संतुलन की क्षमता को बढ़ावा देना।

इस तरह विश्व बैंक उन उत्पादक परियोजनाओं के लिए धन देता है जो उसके सदस्य देशें के आर्थिक विकास की ओर ले जाएँ।

संगठनात्मक ढाँचा : विश्व बैंक के प्रबंध में प्रशासक मंडल, कार्यकारी निर्देशक मण्डल और एक अध्यक्ष शामिल होते हैं। 22 कार्यकारी निदेशकों में पाँच निदेशक सबसे बड़े शेयर धारकों-अमरीका, बिटेन, जर्मनी, जापान और फ्रांस नामित किए जाते हैं। अध्यक्ष कार्यकारी निदेशकों के बोर्ड का प्रमुख होता है। गवर्नरों और कार्यकारी निर्देशकों के मतदान के अधिकार वे जिन सदस्य देशों का प्रतिनिधित्व करते है, उनकी शेयर पूँजी के अनुपात में होता है। इसीलिए विश्व बैंक की नीतियाँ बड़े शेयर धारक देशों से प्रभावित होती रहती हैं।

संसाधन : विश्व बैंक के संसाधनों में अंतरराष्ट्रीय पूँजी बाजारों से प्राप्त ऋणों के अलावा सदस्य देशों के पूँजीगत योगदान शामिल हैं। आरंभ में विश्व बैंक की पूँजी 1000 करोड़ अमरीकी डालर थी जिसमें सोना या अमरीकी डालर (2 प्रतिशत) तथा सदस्यों की अपनी मुद्राएं (18 प्रतिशत) शामिल थीं। शेष 80 प्रतिशत को

आरक्षित रखा गया था जिसका योगदान आवश्यकतानुसार किया जाता है। इस प्रकार पूँजी में हर सदसय देश का केवल 20 प्रतिशत योगदान ही ऋण देने के उद्देश्य से बैंक को उपलब्ध था जबकि शेष 80 प्रतिशत अंतरराष्ट्रीय बाजारों से बैंक द्वारा ऋण लिए जाने पर जमानत का काम करता था। समय-समय पर इस पूँजी में वृद्धि की जाती रही और आज यह 170 अरब डालर है।

वित्तीय योजनाएँ : विश्व बैंक अधिकतर प्रत्यक्ष ऋणों या जमानतों के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करता है। सहायता कृषि और ग्रामीण विकास, ऊर्जा, उद्योग हौर यातायात की परियोजनाओं जैसे उत्पादक कार्यों के लिए दी जाती है। विश्व बैंक 10 से 35 वर्ष में वापसी भुगतान की अवधि वाले ऋण देता है ये ऋण सदस्य देशों की सरकारोंको दिए जाते है या उन सरकारों से जमानत पर प्राप्त होते हैं। बैंक ब्याज की जो दर वसूल करता है, वह बाजार से समतुल्य अवधि के लिए बैंक अगर ऋण ले तो उसकी अनुमति लागत के बराबर होती है। इसके अलावा,हानि से सुरक्षा के लिए एक विशेष भंडार बनाने के लिए बैंक एक प्रतिशत तथा प्रशासनिक खर्चों के लिए 0.5 प्रतिशत की दर से कमीशन भी वूसल करता है।

ऋण देने के अलावा बैंक सदस्य देश की विकास-क्षमता के एक भरे-पूरे आर्थिक सर्वेक्षण में तकनीकि सहायता भी देता है तथा सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए तकनीकी सलाह प्रदान करता है। भारत विश्व बैंक से सबसे अधिक ऋण लेने वाला देश रहा है।

अंतरराष्ट्रीय वित्त निगम (आई एफ सी – इंटरनेशनल फिनांस कारपोरेशन)

यह निगम विश्व बैंक से संबद्ध एक संगठन है। केवल विश्व बैंक के सदसय ही इसके सदस्य हो सकते हैं। विश्व बैंक केवल ऋण ही देता है। किसी परियोजना की अंश पूँजी में भागीदारी की उसे अनुमति नहीं है। इसी कारण निजी उद्यमों को भी अंश पँजी निधि प्रदान करने के लिए 1956 में इस निगम की स्थापना की गई।

कार्य : यह निगम सदस्य देशों में निजी क्षेत्र को बढ़ावा देता है। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं:

अ) जहाँ उचित शर्तों पर पर्याप्त निजी पूँजी उपलब्ध न हो, वहाँ निजी निवेशकों के सहयोग से और सरकारी जमानत के बीना सदस्य देशों के निजी क्षेत्र में निवेश करना,

ब) विदेशी व घरेलू, दोनों प्रकार के निवेश के अवसर तथा अनुभवी प्रबंधन-क्षमता प्रदान करना,

स) सदस्य देशों में उत्पादक निवेश के लिए घरेलू और विदेश, दोनों प्रकार की निजी पूँजी के प्रवाह में सहायक दशाओं को बढ़ावा देना।

सांगठनिक ढाँचा : विश्व बैंक का संबद्ध संगठन होने के नाते उसी का बोर्ड ऑफ गवर्नर्स अंतरराष्ट्रीय वित्त निगम का बोर्ड ऑफ गवर्नर्स भी होता है। इसके अलावा विश्व बैंक का कार्यकारी निदेशक मण्डल ही इस निगम का प्रबंध मण्डल निगम के काम काज के लिए जिम्मेदार होता है। रोजमर्रा के कामकाज कार्यकारी उपाध्यक्ष की निगरानी में चलाए जाते हैं।

संसाधन : पूँजी में सदस्यों के योगदान और संचित भंडार निगम के संसाधन होते हैं। वह विश्व बैंक से अपनी निवल संपदा (नेटवर्थ) के चार गुना तक ऋण ले सकता है।

वित्तीय योजनाएँ : निगम विकासशील देशों में अनेकानेक प्रकार के निजी उत्पादक उद्यमों को दीर्घकानिक ऋण देता या उनकी अंश पूँजी ने निवेश करता है। सहायता प्रापत परियोजना आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक तथा सदस्य देश की अर्थव्यवस्था के लिए लाभकारी होनी चाहिए। निगम द्वारा न्यूनतम 10 लाख और अधिकतम 10 करोड़ अमरीकी डालर की वित्तीय सहायता दी जाती है। इसके अलावा निगम की वित्तीय सहायता आमतौर पर परियोजना के कुल निवेश के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होती।

सीधे ऋण देने और अंश पूँजी निवेश के अलावा निगम विकास-सेवाएँ भी प्रदान करता है। जैसे परियोजनाओं की की पहचान और प्रोत्साहन, निजी स्वामित्व वाली विकास-वित्त कंपनियों को प्रोत्साहन और उनकी स्थापना, पँजी बाजारों की संवृद्धि को बढ़ावा देना तथा निजी क्षेत्र के विकास के लिए अनुकूल माहौल बनाने वाले कदमों के लिए सलाह/तकनीकी परामर्श देना।

अंतरराष्ट्रीय विकास संगठन (इंटरनेशनल डवलपमेंट एसोसिएशन, आई डी ए)

अंतरराष्ट्रीय विकास संगठन विश्व बैंक का एक और संबद्ध संगठन है। इसे विश्व बैंक की 'सस्ते ऋण वाली खिड़की' भी कहा जाता है। यह सदस्य देशों में सामाजिक महत्व वाली, आर्थिक रूप से ठोस परियोजनाओं के लिए 'सस्ते ऋण' देता है। संगठन से सहायता प्राप्त परियोजनाओं में सड़कों, पुलों, झुग्गीवालों के लिए बस्तियों का निर्माण आदि परियोजनाएँ शामिल होती हैं। संबद्ध क्षेत्र के विकास पर अपने लाभकारी प्रभाव के कारण ऐसी परियोजनाएँ 'विकास की उच्च प्राथमिकता' की श्रेणी में आती हैं, पर इन परियोजनाओं के प्रतिफल इतने अधिक नहीं होते कि ऋण पर ब्याज की भारी रकमें अदा हो सकें। यह संगठन ऐसी परियोजनाओं के लिए ब्याज मुक्त ऋण देता है। इन ऋणों की परिपक्वता की अवधियाँ भी लंबी होती है।

कार्य और वित्तीय सहायता : अंतरराष्ट्रीय विकास संगठन सदस्य देशों में भारी प्राथमिकता वाली परियोजनाओं को वित्तीय सहायता देता है। यह वित्त सदस्य सरकारों या निजी उद्यमों को उपलब्ध कराया जाता है। निजी उद्यमों को अग्रिम राशियाँ सरकारी जमानत के बिना भी दी सकती हैं। संगठन कम विकसित

देशों को वित्तीय और तकनीकी सहायता देने के लिए दूसरी अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं और सदस्यों देशों से सहयोग भी करता है। संगठन की वित्तीय सहायता प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

अ) संगठन की वित्तीय सहायतायें ब्याज मुक्त होती हैं। संगठन प्रशासनिक खर्चे पूरे करने के लिए दी जाने वाली राशि 0.75 प्रतिशत की दर से मामूली सेवा शुल्क वसूल करता है।

ब) अदायगी की अवधि प्राय: 50 वर्ष होती है जिस पर आरंभ में 10 वर्ष का स्थगन होता है।

स) संगठन विदेशी मुद्रा का घटक ही नहीं, घरेलू लागत के लिए भी धन देता है।

द) इस सहायता की वापसी ऋण लेने वाली देश की अपनी मुद्रा में भी की जा सकती है।

सांगठिन ढाँचा : विश्व बैंक के सभी सदस्य देश अंतरराष्ट्रीय विकास संगठन के सदस्य बनने के अधिकारी हैं। विश्व बैंक के ही बोर्ड ऑफ गवर्नर्स और कार्यकारी निर्देशक अंतरराष्ट्रीय वित्त निगम की तरह अंतरराष्ट्रीय विकास संगठन के भी बोर्ड ऑफ गवर्नर्स और कार्यकारी निर्देशक होते हैं।

एशियाई विकास बैंक (ए डी बी)

संयुक्त राष्ट्र के एशिया एवं सुदूर पूर्व के लिए आर्थिक आयोग के तत्वाधान में एशियाई विकास बैंक का आरंभ 1966 में हुआ। एशिया क्षेत्र के तथा दूसरे क्षेत्रों के भी देश इसके सदस्य हैं। इस समय इसके 47 सदस्य देश हैं जिनमें 32 एशिया प्रशांत क्षेत्र के हैं तथा 15 यूरोप और उत्तरी अमरीका के हैं।

कार्य : एशियाई विकास बैंक के प्रमुख उद्देश्य और काय्र इस प्रकार हैं:

अ) विकास कार्यों के लिए इकैफे क्षेत्र में सार्वजनिक व निजी पूँजी के निवेश को बढ़ावा देना।

ब) विकास-वित्त के लिए उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करना। इसमें उन क्षेत्रीय, उपक्षेत्रीय व राष्ट्रीय परियोजनाओं और कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जाती है जो पूरो क्षेत्र में सामंजस्यपूर्ण आर्थिक संवृद्धि में अत्यंत कारगार योगदानदें तथा जिनमें क्षेत्र के छोटे या कम विकसित सदस्य देशों की आवश्यकता का विशेष ध्यान रखा गया हो।

द) विशेष प्रस्तावों के निरूपण समेत विकास की योजनाओं व कार्यक्रमों की तैयारी, वित्त-व्यवस्था और कार्यान्वयन में तकनीकी सहायता प्रदान करना।

य) संयुक्त राष्ट्र, उसके अंगों व अधीनस्थ निकायों, खासकर इकैफे के साथ के साथ तथा सार्वजनिक अंतरराष्ट्रीय संगठनों, अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं तथा, सार्वजनिक या निजी राष्ट्रीय संगठनों के साथ सहयोग करना, तथा निवेश और सहायताके अवसरों पर इन संस्थाओं व संगठनों की दिलचस्पी जगाना।

र) ऐसे अन्य कार्यकलाप करना व ऐसी दूसरी सेवाएँ प्रदान करना जिनसे इसके उद्देश्य पूरे होते हों।

सांगठनिक ढाँचा : बोर्ड ऑफ गवर्नर्स एशियाई विकास बैंकका सर्वोच्च नीति- निर्माता निकाय है। इसमें 12 निदेशक होते हैं जिनमें 8 क्षेत्र के और 4 क्षेत्रेतर देशों के प्रतिनिधि होते हैं। बैंक का अध्यक्ष बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा चुना जाता है और वही उस बोर्ड का प्रमुख भी होता है।

संसाधन और वित्तीय सहायता : अंश पूँजी बैंक का वित्तीय संसाधन है। इसमें पूँजी में योगदना और आरक्षित भंडार शामिल हैं। अंश पूँजी निधियों के अलावा बैंक ऋण लेकर भी धन जुटाता है। उसके पास एक विशेष निधि भी है जो सदस्य देशों के योगदानों तथा पहले प्रदत्त पूँजी (पेड-अप कैपिटल) से अलग करके रखी गई राशियों पर आधारित है।

बैंक सामान्यत : उन सदस्य देशों को अंश पँजी निधि से ऋण देता है जो आर्थिक विकास का थोड़ा ऊँचा स्तर प्राप्त कर चुके हैं। विशेष निधि से ऋण ब्याज की अत्यंत रिआयती दरों पर सबसे गरीब देशों को दिए जाते हैं।

5.5 बोध प्रश्न

1. भारतीय औद्योगिक ऋण तथा निवेश निगम के उद्देश्यों एवं कार्यों का उल्लेख कीजिए।
2. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के कर्यों का उल्लेख कीजिए।
3. ग्रामीण समृद्धि में नाबार्ड की क्या भूमिका है?
4. विभिन्न अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
5. अंतरराष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक के कार्यों का उल्लेख कीजिए।
6. अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्यों, कार्यों तथा उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

5.6 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रन्थ

- Gomez, Clifford (2010), Financial Markets, Institutions and Financial Services, PHI Learning, New Delhi.
- Gordon, Natarajan (2010), Financial Markets and Services, Himalaya Publishing House, New Delhi.
- Kohn Meir (1999), Financial Institutions and Markets, Tata McGraw Hill, New Delhi.